Con. 3. VII.5.48
350

अंक 7
संख्या 5

मंगलवार
9 नवम्बर
सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद्

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

भारतीय विधान-परिषद्

मंगलवार, 9 नवम्बर, सन् 1948 ई.

भारतीय विधान-परिषद् की बैठक प्रातः दस बजे कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली में समवेत हुई। उपाध्यक्ष महोदय (डा. एच.सी. मुकर्जी), अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

विधान के मसौदे से सम्बन्धित प्रस्ताव

***उपाध्यक्ष** (डा. एच.सी. मुकर्जी): मुझे विश्वास है कि सभा की यह इच्छा है कि माननीय डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर साधारण वादानुवाद आज समाप्त कर दिया जाये। मैं यह देख रहा हूं कि उन्हीं तर्कों को बार-बार दुहराया जा रहा है और इसलिये मैं यह अनुरोध करता हूं कि जो लोग आज बोलें, वे उन प्रश्नों को न उठायें जिन पर विचार हो चुका है।

***श्री आर. शंकर** (ट्रावनकोर): श्रीमान्, विधान का मसौदा बनाने वालों ने जिस योग्यता से अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, उसके लिये मैं आरम्भ में ही उनको बधाई देना चाहता हूं और विशेषतः डा. अम्बेडकर ने अपने तेजस्वी भाषण में जिस स्पष्टता और योग्यता से विधान के मसौदे के आधारभूत सिद्धांतों की व्याख्या की है, उसके लिये मैं उन्हें बधाई देता हूं। मैं विधान के मसौदे की विस्तृत व्याख्या न कर उसके सम्बन्ध में केवल एक दो बातों की ही चर्चा करके संतोष कर लूंगा। मेरे विचार से एक बहुत ही सशक्त केन्द्र और बहुत कुछ अशक्त और एक समान प्रदेश ही विधान के मसौदे की मुख्य बातें हैं। डा. अम्बेडकर ने बड़ी सच्चाई के साथ रियासतों के प्रतिनिधियों से यह आग्रह किया है कि उनका रुख ऐसा होना चाहिये कि सभी रियासतों और प्रान्तों के लिये यह सम्भव हो सके कि वे एक ही स्तर पर आ जाये और कुछ समय के उपरान्त रियासत और प्रान्त बिना किसी विभेद के समान रूप से संधान के अंग हो सके। परन्तु मेरे

*इस चिह्न का अर्थ है कि यह अंग्रेजी वक्तृता का हिन्दी रूपान्तर है।

[श्री आर. शंकर]

विचार से कुछ ऐसी बातें है जिनके कारण रियासतों के बीच आपस में तथा रियासतों और प्रान्तों के बीच विभेद है। उनमें से कुछ तो बहुत उन्नत है और कुछ ऐसी है, जो अपेक्षाकृत कम समुन्नत है। वास्तव में वे रियासतें पिछड़ी हुई हैं। कुछ रियासतें ऐसी है, जहां पांच प्रतिशत लोग भी साक्षर नहीं है। कुछ रियासत ऐसी है, जहां पचास प्रतिशत से भी अधिक लोग साक्षर है। कुछ रियासतें ऐसी है, जिन्होंने आय-कर लगाया है और कुछ ऐसी है, जिन्होंने आय-कर लगाया ही नहीं है। वास्तव में रियासतों के बीच इतने विभेद है कि कुछ रियासतों और प्रान्तों के बीच भी उतने विभेद नहीं है और इसलिये रियासतों और प्रान्तों के बीच उनके वर्तमान रूप में किसी भी प्रकार की समानता की आशा नहीं की जा सकती हैं। उन्नत रियासत का उदाहरण देने के लिये मैं ट्रावनकोर की रियासत को लेता हूं, जिसका कि सौभाग्य से मैं प्रतिनिधित्व करता हूं। मेरे विचार से ट्रावनकोर भारत की सर्वोन्नत रियासतों में से हैं। कुछ बातों के सम्बन्ध में तो वह प्रान्तों से भी आगे है। उसकी इस स्थिति का कारण यह है कि बहुत समय से उसके आगम के साधनों का सदुपयोग होता रहा हैं और बहुत पहले से वहां के नरेश उस रियासत को उन्नत करने के लिये सचेष्ट रहे है। आज दिन वह भारत में सबसे समुन्नत औद्योगिक क्षेत्रों में से है। वहां पचास प्रतिशत से अधिक लोग साक्षर है। यद्यपि वह एक छोटी रियासतें है, जिसका कि क्षेत्रफल केवल 7662 वर्ग मील है, तथापि उसका आगम 9 करोड़ रुपया हैं। इस समय उसका शिक्षा-व्यय दो करोड़ रुपया हैं, औषधि तथा लोक-स्वास्थ्य व्यय आधे करोड़ से अधिक हैं और ग्रामोन्नति पर भी उसका बहुत व्यय होता है। राष्ट्र निर्माण के अन्य कार्यो में भी वह रियासत बड़ी-बड़ी धनराशियां व्यय करती हैं। परन्तु यदि कल विधान का यह मसौदा कानून का रूप धारण कर लेता है, तो इस रियासत का भविष्य क्या होगा? साधारणतया सभी रियासतों के लोगों को और विशेषतया ट्रावनकोर के लोगों को यही चिन्ता है। हमारा निराक्रम्य आगम लगभग 1 करोड़ रुपया है। हमें आय-कर से लगभग 2 करोड़ का आगम और अन्य संधानीय मदों से लगभग एक करोड़ का आगम प्राप्त होता है। दूसरे शब्दों में जिस दिन से विधान का यह मसौदा कानून का रूप धारण कर लेगा, इस रियासत की लगभग 45 प्रतिशत आय केन्द्रीय आगम का भाग हो जायेगी। इसका परिणाम यह होगा कि ट्रावनकोर जैसी रियासत अपनी वर्तमान शासन-कुशलता में उन्नति करना तो अलग रहा, उसे बनाये भी न रख सकेगी। रियासतों के लोग इस चित्र को बहुत कुछ इस दृष्टिकोण से देखते है। बहुत से नरेशों ने, जो अभी तक लोगों के रास्तें में रोड़ों के समान थे, अपने

राज्यों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने का निश्चय कर लिया है और इस सम्बन्ध में ट्रावनकोर के नरेश ने कोई बात उठा नहीं रखी है। लोगों को अब इसकी चिन्ता है कि वे रियासत के शासन-कार्य को कम से कम उस ढंग से भी कैसे चलायेंगे जैसे कि वह पुराने अनुत्तरदायी शासन-काल में चलता रहा है। मुझे विश्वास है कि इस सभा के माननीय सदस्यों के ध्यान में यह बात आयेगी कि ट्रावनकोर जैसी रियासत के लिये बहुत ही संकटापन्न स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। जब तक मेरी जैसी रियासत के लिये किसी प्रकार की आय-सम्बन्धी स्वतंत्रता प्रवाहित न की जायेगी, तो आज तक जिस उन्नति के स्तर पर वह रही हैं, उसे बनाये रखना उसके लिये असम्भव हो जायेगा। बहुत काल के संघर्ष के बाद लोग यह आशा लगाये बैठे हैं कि रियासतों की वर्तमान उत्तरदायी सरकारें उनके सैकड़ों प्रश्नों को, विशेषत: आर्थिक प्रश्नों को हल करेंगी। परन्तु यदि रियासतों की स्थिति आगे चल कर अच्छी होने के बजाय पहले से बुरी हो जाये, तो वे कुछ भी न कर सकेंगी और किसी भी प्रश्न को हल न कर सकेंगी। जब यह सभा इस मसौदे पर विचार करे, तो इन बातों की ओर ध्यान दें।

दूसरा प्रश्न जिसके बारे में मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं, भाषा का प्रश्न है। उत्तर भारत के माननीय सदस्यों में, जिनकी मातृभाषा हिन्दी या उर्दू है, इसके लिये बहुत उत्साह दिखाई देना है कि इस भाषा को एकाएक उन लोगों पर लाद दिया जाये, जो इसका एक शब्द भी नहीं समझते है। यद्यपि दक्षिण में राष्ट्रभाषा हिन्दी-हिन्दुस्तानी का प्रचार करने के लिये बहुत काम किया गया हैं, परन्तु यदि आप गांवों में जाये तो आप देखें कि एक प्रतिशत लोग भी हिन्दी नहीं जानते है। यदि आप शिक्षा को दृष्टि से उन्नत ट्रावनकोर या कोचीन ऐसी रियासतों को भी देखें, तो आपको एक प्रतिशत लोग भी ऐसे न मिलेंगे जो आज भी हिन्दी या उर्दू समझ पाते है। इसलिये मैं उन सदस्यों से, जिनको इस सम्बन्ध में बहुत उत्साह है, यह प्रार्थना करता हूं कि वे कुछ समय के लिये राष्ट्र-भाषा के प्रश्न को स्थगित कर दें और दक्षिण तथा पूर्व के लोगों को उससे पर्याप्त रूप से परिचित होने का अवसर दें। निस्संदेह सभी जगह लोग हिन्दी के पक्ष में है। केवल कुछ समय—दस या बीस वर्ष—देना होगा। इस बीच अंग्रेजी का वही स्थान रहना चाहिये, जो अभी तक उसका रहा हैं। यदि ऐसा हो जाये तो मेरे विचार से भारत के किसी भाग से भी कोई व्यक्ति हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करने में आपत्ति न करेगा।

चूंकि मेरा समय बीत चुका है, मैं इन शब्दों के साथ समाप्त करता हूं।

*श्री एम. थिरूमल राव (मद्रासः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, इस विधान निर्मातृ सभा में आये हुये एक नये सदस्य के पाते मुझे इस समय जिन थोड़ी सी बातों को कहने का सौभाग्य प्रान्त हुआ है, उन पर सहिष्णुता से विचार करने की प्रार्थना करता हूं।

इस समय महान् परिवर्तनों का आरम्भ काल हैं और हमें अपने भविष्य की ऐसी रूपरेखा निश्चित करने की शक्ति प्रान्त हैं, जो हमारी संस्कृति तथा हमारी परम्परा के अनुरूप हो। निस्संदेह हमारे सम्मुख जो विधान उपस्थित किया गया हैं, उस पर 150 वर्ष के ब्रिटिश शासन की अमिट छाप लगी हुई है। मैं विधान की विस्तृत व्याख्या नहीं करना चाहता। मैं उसके केवल एक अंग के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करता चाहता हूं, अर्थात् इस प्रश्न पर कि क्या इस देश को ब्रिटिश कामनवेल्थ का सदस्य रहना चाहिये या नहीं।

श्रीमान्, लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में स्पष्टतया यह कहा गया है कि हमारे राज्य का आधार पूर्णतया सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र गणतंत्र होता चाहिये। श्रीमान्, संसार की वर्तमान गतिविधि को देखते हुये यह उचित ही है कि भारत को आरम्भ से ही अपने पैरों खड़ा होने का प्रयास करना चाहिये और प्रत्यक्ष रूप से हमें दिखा देना चाहिये कि अपने देश के अनुरूप अपनी संस्थाओं को उन्नत करने में हम समर्थ है। निस्संदेह ब्रिटिश राजनीतिज्ञ और ऐसे अन्य लोग जो साम्राज्यवादी रहे हैं इस सम्बन्ध में सशंक है कि कहीं हम ब्रिटिश साम्राज्य से अलग न हो जाये। पिछले कई वर्षो की घटनाओं के फलस्वरूप 'साम्राज्य' से ऐसी भावना व्यक्त होती है कि अब उससे किसी प्रकार का वैधानिक सम्बन्ध रखने का समय नहीं रह गया है हमें यह जान लेना चाहिये कि यह बात ठीक न होगी कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद या ब्रिटिश कामनवेल्थ से स्थायी रूप से अपना गठबंधन करके हम रूस या अमेरिका ऐसी शक्तियों के द्वेष के भागी बनें।

चाहे इसके विपरीत कुछ भी कहा जाये, इस समय भी शक्ति-संतुलन के सिद्धान्त का संसार की वर्तमान समस्याओं पर पर्याप्त प्रभाव पड़ रहा है और भारत को, जिसका कि हिन्द महासागर में प्रशांत, अन्ध तथा भूमध्य महासागरों के बीच एक महत्त्वपूर्ण स्थान है, विश्व शांति के लिये एक विशेष दायित्व निभाना हैं। यद्यपि हमारा राष्ट्र शैशवावस्था में है और हमारे रक्षा के साधन बहुत ही अपर्याप्त है, परन्तु यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय जगत में कोई ऐसी बात न करे, जिससे कोई देश हमसे बिछुड़ जाये। इसलिये यदि हम स्पष्ट रूप से यह

बता दें कि पूर्णतया सर्वसत्ताधारी स्वतंत्र राज्य ही हमारा आदर्श है और इसी व्यावहारिक आधार पर हम अपने विधान का निर्माण कर रहे हैं, तो भविष्य में हमसे अमेरिकावासी जैसे लोगों का बिछोह न होगा।

ऐंग्लो अमेरिकन गुट के सम्बन्ध में बहुत सी बड़ी-बड़ी बातें कही गई हैं, परन्तु अमेरिका में ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध अप्रत्यक्ष रूप से द्वैषभाव वर्तमान है। अमेरिकावासियों ने इस बात को समझ लिया हैं, यहां तक कि अमेरिका के जनतंत्री पत्रों ने भी यह जान लिया हैं कि भारत को इसलिये शक्तिशाली बनाने के लिये, ताकि वह रूस से पूर्व को चली आने वाली राजनैतिक शक्तियों की बाढ़ के खिलाफ बांध का काम कर सके, उन्हें अपने वाणिज्य व एकाधिपत्य का कुछ मात्रा में त्याग करना होगा। इस दृष्टि से मेरे विचार में हमारे विधान में पूर्णतया गणतंत्रात्मक और स्वतंत्र सर्वसत्ता की व्यवस्था होनी चाहिए। इससे निकट भविष्य में जो देश हमारी सहायता और सहयोग प्राप्त करने के इच्छुक होंगे, वे हमारा आदर करने लगेंगे और थोड़ी बहुत हमारी सहायता भी करेंगे।

अन्य प्रश्नों के सम्बन्ध में हमें आस्ट्रेलिया और कनाडा के विधानों से शिक्षा लेनी चाहिये, क्योंकि इन देशों में केन्द्र और प्रान्तों के कुछ ऐसे सम्बन्ध है कि अभी भी उनके सम्बन्ध में न्यायालयों में विवाद उपस्थित किये जाते है। आस्ट्रेलिया में अभी हाल में बैंकों के राष्ट्रीयकरण के लिये जो प्रयत्न किया गया था, वह इसका एक दृष्टान्त हैं। केन्द्र बैंकों का राष्ट्रीयकरण चाहता था, परन्तु प्रान्तों ने इसका विरोध किया। अपने देश के विकास को दृष्टि में रखते हुये हमें केन्द्र और प्रान्तों के ऐसे सम्बन्ध निश्चित करने है कि उनसे देश का हित हो। निस्संदेह हमें एक सशक्त केन्द्र की आवश्यकता हैं, परन्तु सशक्त केन्द्र का अर्थ यह न होना चाहिये कि प्रान्त अशक्त हो जायें। प्रान्तों को भी अपने विभिन्न कर्त्तव्यों का पालन करने के लिये तथा अपनी योजनाओं के विकास के लिये समान रूप से सशक्त होना चाहिये। अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिये तथा केन्द्र को सशक्त बनाने में अपना योग देने के लिये उनके पास पर्याप्त आर्थिक साधन होने चाहिए।

देश-रक्षा के सम्बन्ध में मुझे यह कहना हैं कि अंग्रेजों की कूटनीतिपूर्ण चालों के फलस्वरूप हमारे बीच दुर्भाग्य से फूट पड़ गई है। चाहे पाकिस्तान हो या भारत, जहां तक देश-रक्षा का सम्बन्ध हैं, भारत अखण्ड हैं। पाकिस्तान के उत्तर में तथा उत्तर पूर्व में भारतीय संघ के विस्तृत प्रदेश हैं। और वह इतना छोटा

[श्री एम. थिरूमल राव]

देश है कि उसे अपने रक्षार्थ अपने साधनों का भारत के साधनों के साथ एकीकरण करना होगा। हमारी सीमायें पाकिस्तान से भी आगे है और हमारी पूर्वी सीमा आसाम से भी परे हैं और यदि हमें इन्हें सुसम्बद्ध बनाना है, तो हमें रियासतों को सुगठित करना होगा और पाकिस्तान से भी एक प्रकार की सन्धि करके उसे इस संधान के महासंधान में सम्मिलित करना होगा।

श्रीमान्, मेरे सम्मुख उस समय का चित्र है जब कि नवीन राज्यों के लिये बहुत काल तक पृथक प्रदेशों के रूप में रहना असम्भव हो जायेगा। यह एक बुद्धिमत्ता का प्रस्ताव था कि अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार, मुद्रा और रक्षा जैसे कुछ उद्देश्यों के लिये इन दो राज्यों को एक हो जाना चाहिये। मैं यह समझता हूं कि निकट भविष्य में, हो सकता है अगले दस वर्षों में, यदि हम अपने विधान का समुचित रूप से विकास कर सके तो इस प्रकार का एका होना असम्भव नहीं है।

श्रीमान्, मुझे एक बात और कहनी है। हम लोग असाम्प्रदायिक राज्य के बारे में बहुत कुछ कहते रहे है। असाम्प्रदायिक राज्य का क्या अर्थ है? मेरे विचार से असाम्प्रदायिक राज्य में धर्म का इतना महत्त्व न होगा कि राज्य के अन्य कार्य गौण हो जायें। परन्तु हमें इसे स्पष्ट कर देना चाहिये कि विधान द्वारा इस देश की प्राचीन परम्परा और संस्कृति की पूर्ण रक्षा होगी।

उपाध्यक्ष महोदय, मुझे जो समय दिया गया था, वह समाप्त हो गया हैं परन्तु यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं अपने भाषण को एक मिनट में समाप्त किये देता हूं।

यदि आप इंग्लैंड की पार्लियामेंट को, जो सभी पार्लियामेंटों की जननी है और इंग्लैंड की अन्य संस्थाओं की ओर दृष्टिपात करें; चाहे वे विश्वविद्यालय हो या न्यायालय हों या अन्य संस्थायें हो, तो आप देखेंगे कि वे गिरजे से किसी न किसी प्रकार संलग्न है। यद्यपि मैं अपनी संस्थाओं में इस सीमा तक धर्म को स्थान देने के पक्ष में नहीं हूं, परन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि हमें अपनी संस्कृति, अपनी राष्ट्रीय विशेषताओं और अपनी परम्परा की रक्षा करनी चाहिये। विधान द्वारा इनकी रक्षा होनी चाहिये। हम जहां कही भी जायें, हमें यह न भूलना चाहिये कि हमारा

राष्ट्र सांकर्य दोष से युक्त केवल विभिन्न संस्कृतियों का बेमेल सम्मिश्रण मात्र नहीं है, किन्तु हमारी अपनी संस्कृति है, अपना शासन हैं और अपनी सभ्यता हैं। विधान में इसका प्रतिबिम्ब होना चाहिये।

***श्री राजबहादुर** (मत्स्य संघ): उपाध्यक्ष महोदय, मैं इस बहस में भाग लेने के लिये इसी कारण से मैंने आपसे समय लिया हैं, कि मैं इस महती सभा का ध्यान उन दो बातों की ओर दिलाऊं, जिनसे कि मेरी समझ में हमारी नवप्राप्त स्वतंत्रता तथा देश की एकता और अखण्डता को पूरा खतरा है और जिनकी ओर संकेत करने को मेरी कर्त्तव्य-भावना मुझे प्रेरित कर रही हैं, मुझे आशा है और मेरी यह इच्छा है कि यह सभा हमारी स्वतंत्रता के नवीन तथा सुकुमार पुष्प की इन दो संकटों से रक्षा करने के लिये विधान में समुचित संरक्षणों की व्यवस्था करेगी। ये संकट इतने गम्भीर है कि इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। मेरा संकेत ''प्रान्तीयता'' तथा ''साम्प्रदायिकता'' की विभीषिकाओं की ओर है, जो ''महान् बलिदान'' के उपरान्त भी अभी मृतप्राय नहीं हुई हैं। इस ''महान् बलिदान'' से मेरा अर्थ राष्ट्रपिता के बलिदान से हैं। अब यह दिखाई देता है कि साम्प्रदायिकता का भूत निश्चित रूप से दफना दिया गया है, परन्तु कल मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि मि. इस्माइल और मि. लारी जैसे माननीय सदस्यों ने...

***नवाब मोहम्मद इस्माइल खां** (संयुक्तप्रान्त: मुस्लिम): मैं यह सूचित करना चाहता हूं कि कल मैं बोला नहीं।

***श्री राजबहादुर**: इस सभा में कुछ सदस्यों ने कल अनुपाती प्रतिनिधित्व और पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों की ओर संकेत किया था। श्रीमान्, मेरे कहने का अर्थ यह है कि यदि हम अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहें, तो जिस प्रकार हमने अपने विधान में अस्पृश्यता के अभिशाप का अन्त करने के लिये एक प्रावधान रखा है, इसी प्रकार हमें उन प्रवृत्तियों की रोकथाम के लिये, जिनके कारण हमारे देश का विभाजन हुआ हैं, किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था करनी होगी। मैं यह इसलिये कह रहा हूं कि देश के विभाजन के फलस्वरूप जो प्रतिक्रिया हुई है, वह हमारे राजनैतिक जीवन में इस समय भी दुखदायी सिद्ध हो रही है। चूंकि हम अभी विभाजन के दुखद परिणामों से युक्त नहीं हुये है, इसलिये इस स्थिति से लाभ उठाने के लिये देश में ऐसे लोग और ऐसी शक्तियां वर्तमान हैं, जो साम्प्रदायिकता से परिपूर्ण राजनीति के पुनरुत्थान तथा उसे चिरस्थायी बनाने के लिये

[श्री राजबहादुर]

यत्नशील है। जब हम अपना विधान बनायें तो हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम इन कलुषित शक्तियों को अपनी स्वतंत्रता को संकट में न डालने दें।

मैं यह कहूंगा कि हमारा देश एक और संकट से पीड़ित हो सकता हैं। वह ''सामन्तवाद'' का संकट हैं, जिसका कि इस समय राजपूताना की कुछ रियासतों में बोलबाला हैं। हमारे राज्य-मंत्री की मेंधावी शक्ति से रियासतों का प्रश्न सुचारू रूप से हल हो गया है, परन्तु फिर भी मैं यह कहूंगा कि राजपूताना की विभिन्न रियासतों में अब भी जनता इन सामन्तशाही जमींदारों के प्रभुत्व से पीड़ित है वहां अब भी जागीरदारी की प्रथा प्रचलित है और जिन गरीब किसानों की स्वतंत्रता से सांस नहीं ले पा रहे है। इन जागीरदारों की प्रतिक्रियावादी प्रवृत्तियों में अभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और इसलिये मुझे आशा हैं कि जिस प्रकार रियासतों का प्रश्न सुचारू रूप से हल कर दिया गया है, उसी प्रकार इन सामन्तशाही जमींदारों के प्रश्न को भी सुचारू रूप से सुलझा कर हल कर दिया जायेगा।

सामन्तवाद की चर्चा करने हुये मेरा ध्यान स्वभावत: रियासतों के प्रश्न की ओर आकर्षित होना हैं। इस सभा के विचारार्थ विधान का मसौदा उपस्थित करते हुए माननीय कानून मंत्री ने दोहरी राजनैतिक व्यवस्था की चर्चा की थी। परन्तु मैं देखता हूं कि इस विधान में रियासतों के लिये प्रान्तों के विधानों से भिन्न विधानों को रख कर तिहरी राजनैतिक व्यवस्था प्रवाहित की गई है। हम यह देखते है कि रियासतों को अपनी पृथक सेनाओं को रखने दिया गया हैं। हम यह भी देखते है कि उनके विधान उन्हीं की पृथक् विधान-परिषदें बनायेंगी। इसके अतिरिक्त उनके अपने पृथक् न्याय-मण्डल होंगे और रियासतों के लोगों को अपने मूलाधिकारों के रक्षार्थ भी सर्वोच्च न्यायालय के सम्मुख अपील करने का अधिकार न होगा। पृथक सेनायें, पृथक विधान-परिषद् और पृथक न्याय-मण्डल ऐसी बातें है, जिनसे हम लोग, रियासतों से आये हुये लोग बहुत चिंतित हैं और मैं यह अनुभव करना हूं कि अब इस समय तो हमें भारतीय संघ के विभिन्न अंगों के विभेद को समाप्त कर ही देना चाहिये। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि यह आशा की जा सकती हैं कि नरेशों ने जिस प्रकार राष्ट्र के हित में अपनी शक्तियों का परित्याग किया है, उसी प्रकार राष्ट्र को सुगठित बनाने के लिये वे रियासतों को प्रान्तों के स्तर में लाने के प्रस्ताव का समर्थन करेंगे। मेरे विचार से इस प्रकार

के किसी प्रावधान की भी व्यवस्था करना सम्भव हो सकेगा कि राजप्रमुखों का वही पद हो, जो गवर्नरों का है। विभिन्न प्रान्तों में गवर्नरों की जो शक्तियां हैं, वही शक्तियां राजप्रमुखों की भी होनी चाहिये, परन्तु साथ ही मैं श्री व्यास के इस अनुरोध का समर्थन करता हूं कि गवर्नर के उच्च पद के लिये निर्वाचित होने का अधिकार एक साधारण मनुष्य को भी प्राप्त होना चाहिये। मेरी समझ में नहीं आता कि गवर्नर का उच्च पद केवल नरेशों तक ही क्यों सीमित रखा जायें और रियासतों के सम्बन्ध में उसके लिये नियुक्ति उन्हीं की इच्छा पर क्यों निर्भर हो?

अब मैं आदरपूर्वक एक और बात की ओर संकेत करना चाहता हूं, जो अभी हाल ही में हमारे राजनैतिक जीवन के सम्बन्ध में ज्ञात हुई है और वह यह है कि आजकल सभी प्रान्तों में हमारे मंत्रियों की बड़ी आलोचना हो रही है। वह आलोचना निराधार हो, परन्तु इस प्रकार की आलोचना तो की ही जा रही है कि वे अपने जीवन में गांधी जी के आदर्शों का अनुसरण नहीं कर रहे है। वे हवाई जहाजों से मात्रा करते हैं, विशाल भवनों में रहते है, इत्यादि। इसलिये मैं समझता हूं कि हमारे विधान में कोई ऐसा प्रावधान होना चाहिये जिसमें कि इसका उल्लेख हो कि मंत्रियों का आचरण किस प्रकार का हो ताकि आगे चलकर इतिहासकार यह निर्णय न करें कि हम अपने कर्त्तव्यपालन में असमर्थ रहे।

अन्त में श्रीमान्, मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि विधान में राज्य-परिषद् के लिये जो प्रावधान रखा गया है, वह मुझे अनावश्यक प्रतीत होता है, क्योंकि उत्तरागार के कारण लोगों की उन्नति के मार्ग में बाधा ही पड़ी है। यह प्रतीत होना है कि इस प्रावधान को रखकर पश्चिमी देशों की दासत्व भाव से नकल की गई हैं। मेरे विचार से यह अनावश्यक है।

मुझे आशा है कि यह सभा मेरे सुझावों पर यथासमय विचार करेगी।

***प्रो. एन.जी. रंगा** (मद्रासः जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मुझे यह देख कर खेद हुआ है कि मसौदा-समिति के सदस्य उस आधारभूत बात को भूल गये हैं, जिसके फलस्वरूप यह विधान-परिषद् अस्तित्व में आई और उनको भारत के विधान के इस मसौदे को तैयार करने का अवसर मिला। उनसे यह आशा की जा सकती थी कि वे हमारे सम्मुख यह बात साफ तौर पर रख देते कि यह विधान उस

[प्रो. एन.जी. रंगा]

विधान-परिषद् द्वारा बनाया जा रहा है, जो इस देश के अगणित शहीदों और स्वतंत्रता संग्राम के सैनिकों के परिश्रम के फलस्वरूप अस्तित्व में आई और जिस स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व महात्मा गांधी ने किया; परन्तु इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा गया है। इसलिये मेरा यह सुझाव है कि हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त यह विधान-परिषद् अस्तित्व में आई और यह कि हमारे राष्ट्र के लिये स्वतंत्रता के अधिकार को प्राप्त करने के लिये अगणित स्त्री-पुरुषों ने निरंतर जो संग्राम किया, उसके लिये हम कृतज्ञ हैं। अपने स्वतंत्रता-संग्राम के इन शहीदों की सेवाओं की प्रशंसा में हम कम से कम इतना तो कह ही सकते है। मुझे आशा हैं कि समय आने पर यह सभा इस मसौदे में इस आशय के आवश्यक संशोधन को स्थान देगी।

श्रीमान्, अब मैं यह कहूंगा कि डा. अम्बेडकर ने ग्राम-पंचायतों के बारे में जो कुछ कहा, उसे सुन कर मुझे बहुत दुख हुआ। उन्होंने हमारे देश की जनतंत्रात्मक परम्परा की ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यदि वे पिछले एक सहस्त्र वर्ष से अधिक काल में दक्षिण भारत में ग्राम-पंचायतों ने जो उन्नति की हैं, उससे परिचित होते तो वे ऐसी बातें न कहते। यदि उन्होंने भारत के इतिहास को उतनी ही सावधानी से पढ़ा होता, जितनी सावधानी से उन्होंने अन्य देशों के इतिहास पढ़े है, तो वे ऐसी बातें कदापि न कहते। श्रीमान्, मैं इस सभा के ध्यान में यह बात लाना चाहता हूं कि इस विधान में अधिक से अधिक राजनैतिक संस्थाओं को प्रवाहित किया जाये, ताकि हमारी ग्रामीण जनता जनतंत्रात्मक संस्थाओं से अधिक से अधिक परिचय प्राप्त कर सके, जिससे वे जनतंत्र के नवीन युग में प्रौढ़ मताधिकार द्वारा अपने उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके। हमारे देश में इन ग्राम-पंचायतों के अभाव में हमारे जन साधारण के लिये यह कैसे सम्भव होगा कि वे जनतंत्रात्मक व्यवस्था में यथोचित भाग ले सके? श्रीमान्, क्या हम शासन-प्रबन्ध का केन्द्रीयकरण चाहते है, अथवा केन्द्र-विघटन? महात्मा गांधी तीस वर्ष तक केन्द्र-विघटन के पक्ष में अपना तर्क उपस्थित करते रहे। कांगेस जनों के नाते हमने केन्द्र-विघटन की प्रतिज्ञा ली है। वास्तव में सारा संसार इस समय केन्द्र विघटन के पक्ष में हैं; परन्तु यदि हम केन्द्रीयकरण के पक्ष में हैं, तो मैं इस सभा को यह चेतावनी देना चाहता हूं कि इससे केवल सोवियत-व्यवस्था अथवा एकतंत्रात्मक व्यवस्था स्थापित हो सकेगी और जनतंत्र स्थापित न हो सकेगी। इसलिये श्रीमान्, मैं तथाकथित सशक्त केन्द्र

के नारे के पक्ष में नहीं हूं। आधुनिक औद्योगिक उन्नति तथा आर्थिक दशाओं के फलस्वरूप केन्द्र का सशक्त होना, उत्तरोत्तर सशक्त होना, अवश्यम्भावी है। इसलिये आरम्भ में ही केन्द्र को विशेष रूप से शक्तिशाली बनाने का प्रयास अनावश्यक ही नहीं, संकटापन्न भी हैं। आरम्भ में अपने लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में हमने यह कहा था कि प्रान्तों को अवशिष्ट अधिकार दिये जाये, परन्तु मसौदा बनाने वालों ने यह समझा कि इन दो वर्षों के अल्पकाल में लोकमत बिल्कुल ही बदल गया है और केन्द्र को अत्यन्त शक्तिशाली बनाने के पक्ष में हो गया है।

निस्संदेह मैं इतने अधिक विषयों को समवर्ती विषयों के रूप में रखने के पक्ष में नहीं हूं। जैसा कि श्री सन्तानम् ने कहा था कि जिस विषय को आप आज समवर्त्ती विषय समझ रहे हैं, वह पांच या दस वर्ष में ही पूर्णतया संधानीय विषय हो सकता हैं। इसलिये यद्यपि मैं अवशिष्ट अधिकारों को केन्द्रीय सरकार के लिये छोड़ने के लिये तैयार हूं किन्तु मैं यह अवश्य चाहता हूं कि जिस प्रकार उन्हें विधान के मसौदे में अशक्त बना दिया गया है उस प्रकार उन्हें अशक्त न बनाना चाहिये।

श्रीमान्, अत्यधिक केन्द्रीयकरण का निश्चित रूप से यही परिणाम होगा कि केन्द्रीय सरकार सशक्त न होगी, बल्कि केन्द्रीय सचिवालय सशक्त हो जायेगा। केन्द्रीय सचिवालय में एक चपरासी और दफादार से लेकर सेक्रेटरी तक प्रत्येक व्यक्ति अपने को किसी प्रान्तीय प्रधान मंत्री से बड़ा आदमी समझने लगेगा और प्रान्तों के प्रधान-मंत्रियों को केन्द्र से किसी प्रकार की सूचना प्राप्त करने के लिये दफ्तर-दफ्तर में ठोकर खानी पड़ेगी। धारा-सभाओं के सदस्यों के नाते हम यह जानते हैं कि मंत्रियों को सचिवालय में इन सेक्रेटरियों के कार्य पर पूर्ण नियंत्रण रखने में कितनी कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। इस दशा में प्रान्तीय सरकारों को अपना दास बनाना और उन्हें केन्द्रीय सचिवालय और केन्द्रीय नौकरशाही के प्रभुत्व में रखना बहुत ही संकटापन्न होगा।

श्रीमान्, मैं अवश्य ही प्रान्तीय सीमाओं के पुनर्निर्धारण के पक्ष में हूं, परन्तु इसको दृष्टि में रखने हुये कि इसकी सम्भावना की जांच के लिये विधान-परिषद् के अध्यक्ष महोदय ने एक भाषा-सम्बन्धी आयोग नियुक्त किया है। मेरे विचार से इस सभा में इस विषय पर विस्तृत वादानुवाद नियमानुकूल न होगा। जब यह विषय विचाराधीन है और इस आयोग ने अपनी सम्मति प्रकट नहीं की है, तो प्रधानमंत्री और उपप्रधान मंत्री से लेकर इस सभा के एक साधारण सदस्य तक प्रत्येक व्यक्ति

[प्रो. एन.जी. रंगा]

को अपना मत प्रकट करने के पहले यह समझ लेना चाहिये कि भाषा के आधार पर प्रान्तों की सीमाओं के पुनर्निधारण का प्रश्न विचाराधीन है। यद्यपि मुझे एक भाषा-भाषी प्रान्तों के पक्ष में बहुत कुछ कहना है, परन्तु इस समय मैं इससे अधिक और कुछ नहीं कहना चाहता हूं।

हमारे आदर्श क्या होंगे? हमने मूलाधिकारों के अध्याय में तथा निदेशक सिद्धान्तों के अध्याय में अपने कुछ आदर्शों का उल्लेख किया हैं। परन्तु क्या यह आवश्यक नहीं है कि इन निदेशक सिद्धान्तों में से किसी एक में हम इसे पूर्णतया स्पष्ट कर दें कि राज्य का यह कर्त्तव्य हैं कि वह प्रत्येक गांव और गांवों के प्रत्येक समूह में ग्राम-पंचायतों को स्थापित करे, जिससे ग्रामीणों को स्वायत्त-शासन की शिक्षा पाने और सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में ग्रामीण स्वायत्त-शासन की स्थापना में सहायता मिल सके? इस प्रकार से ग्राम-पंचायतें हमारे विधान की आधारशिला सिद्ध होंगी।

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, मैं प्रान्तों और रियासतों के बीच किसी विभेद का समर्थन नहीं कर सकता। ऐसा क्यों हो कि प्रान्त तो डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के समान बना दिये जायें और इन रियासतों को सभी प्रकार के विशेषाधिकार दिये जाये? इन रियासतों को अपनी विधान-परिषद् स्थापित करने और अपने विधान बनाने की आज्ञा क्यों दी जायें? या तो हम सशक्त राज्यों को बना सकते है और भारतीय रियासतों तथा प्रान्तों को इसी प्रकार का होना चाहिये या हम अशक्त राज्यों तथा प्रान्तों का निर्माण कर सकते है जैसा कि इस विधान में प्रस्तावित है। मैं प्रान्तों और राज्यों को अशक्त बनाने के प्रस्ताव का कभी भी समर्थन नहीं कर सकता। मैं शक्तिशाली राज्यों के पक्ष में हूं। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि भारतीय रियासतों के मेरे माननीय मित्र सभी साधनों का एकीकरण करने में हमारे साथ सहयोग करें और फिर हम सभी इस प्रस्ताव पर एकमत हो जाये कि सभी भारतीय रियासतों और प्रान्तों को एक ही स्तर पर रखा जायें और उनको यथासम्भव शक्तिशाली बनाया जायें।

श्रीमान्, हमने अपने लक्ष्यों का वर्णन करते हुये अपने ग्रामीण लोगों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया है। औद्योगिक श्रमिकों का निस्संदेह कुछ उल्लेख है। निस्संदेह औद्योगिक श्रमिक अभागे है, परन्तु वे ग्रामीणों से अधिक अभागे नहीं है। हमें अपने गांवों के सम्बन्ध में इस ओर भी ध्यान देना चाहिये। अब तक पर्याप्त विलम्ब

हो चुका है और न होना चाहिये। निस्संदेह भारतीय कांग्रेस के सन् 1942 ई. के बम्बई के प्रस्ताव में खेतों, कारखानों, इत्यादि में काम करने वालों का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। परन्तु इस विधान में उनका उल्लेख नहीं किया गया है। उल्लेख किया गया हैं तो केवल औद्योगिक श्रमिकों का किया गया है। इसलिये मेरा यह सुझाव हैं कि हम जो कुछ भी करे वह गांवों में, कस्बों में, खेतों में तथा कारखानों, इत्यादि में काम करते वालों के लाभ के लिये हो।

श्रीमान्, अल्पसंख्यकों के सम्बन्ध में मैं यही कहूंगा कि जहां तक महान् मुस्लिम जाति का सम्बन्ध है, मैं उनके लिये जगहें सुरक्षित रखने में पक्ष में नहीं हूं। वे अपनी जाति को अब इतनी गई बीती नहीं समझ सकते कि उनके लिये इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता हो। उनमें से एक मित्र ने आगे बढ़कर यह भी कहा हैं कि उनको इस प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता नहीं हैं।

मैं द्विवेश्म विधान-मण्डल के पक्ष में नहीं हूं और विशेषत: प्रान्तों में तो इस प्रकार की व्यवस्था होनी ही नहीं चाहिये। द्वितीय सभा की व्यवस्था करते से उन्नति के मार्ग में बाधा ही पड़ेगी। कुछ लोगों का यह विचार है कि बिना इस प्रकार के अवरोध के कार्य सुचारु रूप से, नहीं चल सकता परन्तु मेरे विचार से इससे केवल अनुदारता का प्रादुर्भाव होगा। इसलिये हमें इस प्रकार की व्यवस्था न करनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त कुछ मित्रों ने यह मत प्रकट किया था कि इस विधान को एक डण्डे के समान बेलोच बना देना चाहिये। मैं बेलोच डण्डों के पक्ष में नहीं हूं। मैं एक लचीला विधान चाहता हूं। हमने यह देखा कि पिछले दो वर्षों में हमें कभी एक तरफ जाने की आवश्यकता पड़ी, तो कभी दूसरी तरफ जाने की; कभी अवशिष्ट अधिकार प्रान्तों को देने पड़े, तो कभी केन्द्र को सौंपने पड़े। फिर अगले दस वर्षों में तो अपने अनुभवों के आधार पर हमें कई वैधानिक परिवर्तन करते पड़ेंगे। अभी तक हमें कोई अनुभव नहीं है। हमारे वैधानिक सलाहकार सारे संसार में घूमे और उन्होंने राजनीतिज्ञों से परामर्श किया और यहां वापस आकर उन्होंने कई संशोधनों को स्थान देने की राय दी। हम नहीं जानते है कि जब यह विधान स्वीकार हो जायेगा और हमारे नये विधान-मण्डल अस्तित्व में आ जायेंगे, तो अगले दस वर्षों में हमें अपने विधान में न जाने कितने संशोधन करते पड़ें। इसलिये कल माननीय प्रधानमंत्री ने कम से कम अगले दस वर्षों में आवश्यक

[प्रो. एन.जी. रंगा]

वैधानिक संशोधनों को स्थान देने की सुविधा के लिये विधान को यथासम्भव लचीला बनाने के पक्ष में जो मत प्रकट किया, उसका मैं समर्थन करता हूं।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मसौदा-समिति के विधान के इस मसौदे को हमारे सम्मुख रखते ही इसके सम्बन्ध में बहुत सी आधारभूत आपत्तियां की गई थीं। मैं इसे स्वीकार करता हूं कि इस विधान में हमारी प्राचीन संस्कृति तथा परम्परा का कहीं भी प्रतिबिम्ब नहीं है यह सच है कि पश्चिम के प्राचीन विधानों के अंशों को लेकर उनको बेमेल ढंग से इसमें स्थान दिया गया है और यहां तक कि वहां के कुछ नवीन विधानों की उपेक्षा भी की गई है और साथ ही सन् 1935 ई. के भारत सरकार के अधिनियम की नकल की गई है। यह सच हैं कि इन सबके अंशों को लेकर उन्हें एक साथ रखा गया है। इसके लिये डा. अम्बेडकर उत्तरदायी नहीं है। इस प्रकार के विधान का उत्तरदायित्व हम ही लोगों पर है। हमने इसकी चिन्ता नहीं की कि हम इसमें कुछ ऐसी विशेष बातों को स्थान दें, जिनसे हमें अपनी प्राचीन सभ्यता का स्मरण हो आये। इसमें हमारा ही अधिक दोष है और डा. अम्बेडकर का उतना दोष नहीं है।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि डा. अम्बेडकर ने विधान के विभिन्न प्रावधानों का विश्लेषण किया और दुर्भाग्य से उसके कुछ अंगों पर जोर दिया तथा ग्राम-पंचायतों, ग्रामीण स्वायत्त-शासन और जनतंत्र पर उन्होंने अपना मत प्रकट किया। वह चाहते तो इन प्रश्नों के सम्बन्ध में हमारे सामने तथा इस सभा के सामने विवाद खड़ा न कर सकते थे। श्रीमान्, मेरी अपनी इच्छा तो यह है कि यह विधान स्वतंत्र ग्राम-पंचायतों पर आधृत होना चाहिये। यदि इस सभा या किसी अन्य सभा के लिये किन्हीं व्यक्तियों को चुनने इत्यादि जैसे कुछ सार्वजनिक कामों के लिये ही लोग एकत्रित हों और इसके अतिरिक्त सामूहिक रूप से उन्हें कोई कार्य करने को न हो, तो जनतंत्र का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। भारत में इस समय यही होता है। गांव के लोगों को अभी तक जनतंत्र के योग्य अपने को बनाने के लिये कोई भी अवसर नहीं मिला है। उन्होंने किसी के साथ मिलकर उत्तरदायित्व को वहन नहीं किया हैं। वे बहुत ही अनुत्तरदायी है। अंग्रेजों ने इसे सामने रख कर और इस स्थिति को बनाये रख कर हम पर 150 वर्ष तक शासन किया। उन्होंने हमारी स्वतंत्रता के तत्वों को, हमारी अकेन्द्रित आर्थिक व्यवस्था को तथा हमारी ग्राम-पंचायतों को विनष्ट कर दिया। वे शासन का संकेन्द्रण चाहते थे और उन्होंने सारी शक्ति गवर्नर-जनरल को और अन्ततोगत्वा ब्रिटिश पार्लियामेंट को

प्रदान कर दी थी। इसी दृष्टि से उन्होंने ऐसी कार्यवाही की, जिससे गांव अपना शासन स्वयं न चला सकें। हमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि जिस सामाजिक व्यवस्था को हम स्थापित करने जा रहे हैं, उसकी इकाइयां ग्राम ही हों। ग्रामों में भी मैं चाहता हूं कि परिवार ही इकाई समझा जाये, यद्यपि सम्पूर्ण भारत के लिये हम जो कार्य करें, उनके लिये व्यक्ति को ही इकाई समझा जाये और वही मतदान दे। गांवों का इस आधार पर पुनर्निर्माण होना चाहिये, अन्यथा वे केवल व्यक्तियों के समूह मात्र रह जायेंगे और उनका कुछ भी सार्वजनिक उद्देश्य न रह जायेगा। इस दशा में वे यदाकदा ही एकत्रित होंगे और उन्हें अपनी यथोचित आर्थिक तथा राजनैतिक व्यवस्था करने का अवसर प्राप्त न होगा।

अपनी वर्तमान परिस्थिति में क्या हमारे लिये यह सम्भव है कि हम तुरन्त ही अपने विधान की ग्राम-पंचायतों पर आधृत करें? मैं इसे स्वीकार करता हूं कि हमारा लक्ष्य यही होना चाहिये। परन्तु ये ग्राम-पंचायतें है कहां? हमें उन्हें स्थापित करना हैं। वर्तमान परिस्थिति में पश्चिमी विधानों पर आधृत जो विधान हमारे सामने रखा गया है, उससे अच्छा विधान हम बना ही नहीं सके। इसलिये मेरी यह राय हैं कि हमें अपने निर्देशक सिद्धांतों के साथ एक खण्ड इस बात पर जोर देने के लिये जोड़ना चाहिये कि भविष्य में जो सरकारें अस्तित्व में आयें, वे ग्राम-पंचायतों को स्थापित करें और उन्हें राजनैतिक स्वायत्त-शासन तथा आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करें, ताकि वे अपने प्रश्नों की स्वयं अपने ढंग से हल कर सकें। आगे चल कर एक समय ऐसा आयेगा, जब हम इन स्वतंत्र पंचायतों के आधार पर एक विधान बना सकेंगे। कल हमारे नेता, हमारे प्रधानमंत्री महोदय ने यह कहा था कि इस विधान को पांच वर्ष तक अस्थायी रूप से स्वीकार किया जाये, ताकि इस काल में हमें जो कुछ भी अनुभव हों, उसके आधार पर भविष्य में प्रौढ़ मताधिकारियों द्वारा निर्वाचित एक परिषद् उसमें संशोधन या परिवर्तन कर सके। मैं उनके कथन का समर्थन करता हूं। मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि मसौदा-समिति ने जो विधान हमारे सम्मुख रखा हैं, उसे इस संरक्षण के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए और उसे अन्तिम रूप दे देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त इस विधान के विरुद्ध एक और आलोचना की गई है और मेरे विचार से वह अधिक गम्भीर आलोचना है। साधारण व्यक्ति के लिये राजनैतिक जनतंत्र का कुछ भी अर्थ नहीं है, जब तक कि उसके साथ आर्थिक जनतंत्र संलग्न न हो। मूलाधिकारों में भाषण देने के अधिकार, सभाओं में भाषण देने के अधिकार, इच्छानुसार लिखने के अधिकार आदि का आश्वासन दिया गया है, परन्तु

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

जीवित रहने के अधिकार का कोई आश्वासन नहीं दिया गया है। प्रत्येक मनुष्य के लिये जीवन धारण करने के लिये खाना और कपड़ा आवश्यकीय है। क्या कहीं विधान में एक शब्द भी इस आशय का हैं कि प्रत्येक मनुष्य को खाना और कपड़ा राज्य देगा? राज्य को प्रत्येक व्यक्ति के लिये आजीविका के साधन उपलब्ध करने चाहिये। रूस ने इस प्रश्न को हल करने का बीड़ा उठाया हैं और वह खाद्य पदार्थो को उत्पन्न करने तथा प्रत्येक नागरिक को भोजन देने के लिये उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण करने के लिये संचित है। इंग्लैंड में यदि सरकार एक नागरिक को भी भूख से मरने दे, तो वह एक दिन के लिये भी पदारूढ़ नहीं रह सकती। बंगाल में अकाल से 35 लाख लोग मर गये, परन्तु हमने उससे कोई शिक्षा नहीं ली। क्या हम इसी प्रकार की दुर्घटनायें होने देंगे? क्या विधान में इस आशय का एक शब्द भी हैं कि आने वाली सरकारों पर इसका दायित्व हैं कि भारत में कोई व्यक्ति भूख से न मरे। जब तक लोगों को जीवन धारण के साधन ही उपलब्ध नहीं है, तो यह कहने से क्या लाभ है कि प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा दी जायेगी और प्रत्येक व्यक्ति को राजनैतिक अधिकार प्राप्त होंगे, इत्यादि? इंग्लैंड में सरकार को या तो प्रत्येक व्यक्ति को आजीविका प्रदान करनी होती हैं, या उसे कुछ धन देना होता है ताकि वह भूख से न मरे। यह बड़े खेद की बात हैं कि हमने अपने विधान में इस आशय का कोई प्रावधान नहीं रखा हैं। मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि अब भी इसे स्थान दिया जा सकता हैं। चाहे अन्य बातों को हम स्थगित कर दे, परन्तु हमें इसकी चिंता करनी चाहिये।

एक और महत्त्वपूर्ण विषय पर हमें विचार करना है और उसकी व्यवस्था करनी हैं, अन्यथा भारत में केवल आन्तरिक अशांति की ही सम्भावना न होगी, किन्तु वह युद्ध-ग्रस्त भी हो सकता है। लड़ाई के बादल उमड़ रहे है। शक्ति प्राप्ति और संसार के प्रभुत्व के लिये दो विचारधाराओं में संघर्ष है। एक तरफ तो पश्चिम का जनतंत्र है, परन्तु उसके साथ अमेरिका का आर्थिक एकतंत्र भी हैं। हम आर्थिक एकतंत्र को किसी प्रकार भी नहीं चाहते, परन्तु जनतंत्र को अवश्य चाहते है। रूस में राजनैतिक जनतंत्र तो नहीं हैं, परन्तु आर्थिक जनतंत्र है। दोनों शक्तियों के बीच संसार के प्रभुत्व के लिये संघर्ष हैं और इस कारण किसी समय भी युद्ध छिड़ सकता हैं। क्या इस विधान में कहीं इसका भी उल्लेख है कि हम आर्थिक जनतंत्र तथा राजनैतिक जनतंत्र के पक्ष में है? लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में अस्पष्ट रूप से केवल यह कहा गया है कि सामाजिक और आर्थिक न्याय होगा। आर्थिक न्याय का कुछ भी अर्थ हो सकता हैं और कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता है। इसलिये

में यहीं पर और इसी समय यह कह देना चाहता हूं कि ऐसी कार्यवाही की जानी चाहिये कि आने वाली कोई भी सरकार उत्पादन के साधनों की गैर-सरकारी माध्यमों के हाथ में न दे सकें। हमने देखा है कि गैर-सरकारी माध्यमों के हाथ में देने से क्या होता है। जहां तक कपड़े का सम्बन्ध है, नियंत्रणों को हटाने के कुछ ही दिनों बाद दाम चढ़ गये। हम सभी कारखानों को अपने हाथ में क्यों न ले ले और कपड़े को स्वयं क्यों न तैयार करें? खाने के सम्बन्ध में भी इस सरकार के और पिछली सरकार के सभी प्रकार के प्रयत्न करने पर भी क्या हम पर्याप्त मात्रा में खाद्य पदार्थ उत्पन्न कर सकें हैं और उन्हें देश में वितरित कर सकें हैं? इसलिये मैं यह कहूंगा कि अब इस देश के लिये वह समय आ गया है, जब इसे अपना पुराना मार्ग छोड़ देना होगा। हमें पश्चिम के आर्थिक एकतंत्र और रूस के राजनैतिक एकतंत्र का अनुसरण न करता चाहिये। हमें मध्यम मार्ग का अनुसरण करना चाहिये, जिससे हमें राजनैतिक जनतंत्र तथा आर्थिक जनतंत्र दोनों प्राप्त हो। यदि हमें एशिया का रक्षक होना है, एक गया मार्ग प्रशस्त करना है, तथा भविष्य में किसी भी युद्ध में संलग्न नहीं होना है, तो इसी प्रकार हम सफल हो सकते हैं। हमें संतुष्ट होकर बैठे न रहना चाहिये। साम्यवाद फैल रहा है। उत्तर में साम्यवाद का ही बोलबाला है और वह हमारे दरवाजे तक ही पहुंच गया है। चीन को तो साम्यवादी बहुत कुछ निगल ही गये है। हिन्द-चीन का भी यहीं हाल हैं। बर्मा भी उनके चंगुल में फंसा हुआ हैं। मैं कह नहीं सकता कि कलकत्ते में टेलीफोन के तारों को किसने तोड़-फोड़ दिया। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि वहां पानी की कल और बिजलीघर की भी तोड़-फोड़ देने की चेष्टा हो रही है। एक अफवाह यह भी फैली हुई है कि दिल्ली में भी वाटर वर्क्स विभाग और बिजली के विभाग में हड़ताल होने जा रही है। जब तक हम इस देश में आर्थिक जनतंत्र स्थापित करने का निश्चय न कर लेंगे और उसके लिये अपने विधान में समुचित व्यवस्था न कर देंगे, हम अपने देश में साम्यवाद के प्रवाह को न रोक सकेंगे।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात, जिसकी व्यवस्था करना आवश्यक हैं, यह हैं कि हमारे देश का यथाशीघ्र सुसंगठन होना चाहिये। कल अपने मित्र श्री हनुमन्थय्या के शब्दों को सुन कर मुझे आश्चर्य हुआ। रियासतों के लोग भारत के अन्य लोगों के साथ मिलने के लिये चिंतित थे। वे नरेशों से छुटकारा पाना चाहते थे। हमने उनकी सहायता की। जब उन्होंने स्वतंत्रता प्राप्त कर ली, तो अब वे इन नरेशों से आगे बढ़ना चाहते है और अपनी रियासतों में स्वयं शासक हों जाना चाहते हैं। बड़ी

[श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर]

और छोटी दोनों प्रकार की रियासतें भारत से पृथक होना चाहती है। वे उसी विधान को क्यों न स्वीकार कर लें, जो प्रान्तों के लिये बनाया गया है?

***श्री के. हनुमन्थय्या** (मैसूर): श्रीमान्, अपनी बातों का स्पष्टीकरण करने के लिये मैं यह कहना चाहता हूं कि मैंने किसी भी रियासत के लिये पृथक् स्थान या स्वतंत्रता की मांग नहीं की है।

श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर: एक दृष्टिकोण इस प्रकार का है कि यदि रियासतें भारत में समाविष्ट हों जाये, तो वे अपनी छोटी सी जगहों में अपने प्रधानमंत्री रखने के अजीब अधिकार से वंचित हो जायेंगी। उनको अवश्य यह असुविधा होगी, परन्तु भारत के शेष भागों के स्तर पर आने से उनको लाभ ही होगा। वे भारत के शेष भागों को अपना क्यों नहीं समझते और तीन चार विषयों के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों को अपने ही लिये क्यों सुरक्षित रखते है?

(इस समय उपाध्यक्ष महोदय ने घण्टी बजाई)

किसी विधेयक के सम्बन्ध में समय का कोई प्रश्न नहीं उठता, परन्तु यह आश्चर्य की बात है कि आपने काल-सीमा रखी है।

***उपाध्यक्ष**: आपको दूसरों के सामने आदर्श रखना चाहिये।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगर**: आप जो कुछ कहते है, उसे मैं स्वीकार करना हूं। मुझे कई अवसर मिलेंगे और उस समय मैं इसे स्पष्ट कर दूंगा।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी** (आसाम : जनरल): श्रीमान्, इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वादानुवाद में भाग लेने का जो अवसर आपने मुझको प्रदान किया है, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। परन्तु अन्य बातें कहने के पहले मैं मसौदा-समिति के सदस्यों, उसके योग्य सभापति और सबसे अधिक अपने वैधानिक सलाहकार की प्रशंसा में अपना भी योग देना चाहता हूं, जिन्होंने अपने युवाकाल में मेरे गरीब प्राप्त के लिये जो सेवायें कीं, वे अब भी बड़े स्नेह और बड़ी कृतज्ञता से स्मरण की जाती है।

परंतु मैं यह कहूंगा कि यह मसौदा दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता इसमें दोनों

ही प्रकार के दोष हैं। जो बातें होनी ही न चाहियें थीं, वह इसमें वर्तमान हैं और जो होती चाहिये थीं, वे इसमें है नहीं। इनकी ओर मैं अपने भाषण में संकेत करूंगा। पहला प्रश्न जो मेरे ध्यान में आता है और जिस पर इस सभा को विचार करना चाहिये, यह है कि क्या आसाम का राज्य इस विधान-सम्बन्धी अधिनियम की प्रथम अनुसूची में रखा जाना चाहिये या नहीं। इस समय परिस्थिति कुछ जटिल हो गई हैं और आपको हमेशा के लिये ऐसे उपायों के बारे में निश्चय कर लेना चाहिये और उन्हें इस विधान में प्रवाहित कर लेना चाहिये, जिनसे आसाम भारत में रह सकें। मेरा संकेत इस ओर है कि जहां तक मेरे प्राप्त का सम्बन्ध है, उसके आर्थिक साधनों की दुखद उपेक्षा की जा रही हैं। प्रतिवेदन में यह कहा गया हैं कि पांच वर्ष तक स्थिति को यथापूर्व बनाये रखना चाहिये, जिसका अर्थ यह हैं कि पांच वर्ष के अन्त में आसाम प्रान्त की महत्त्वपूर्ण प्रान्तों में गिनती न हो सकेगी। श्रीमान्, मैं इसे कुछ विस्तार से कहूंगा। इस समय उस प्रान्त के खर्च में एक करोड़ रुपये की कमी है और वहां का कुल आगम, जिसमें भारत सरकार से प्राप्त धन भी सम्मिलित है, चार करोड़ रुपया है; परन्तु वहां पांच करोड़ रुपया व्यय हो चुका है। यदि आपको किसी भारतीय प्राप्त के शासन-प्रबन्ध को निम्न से निम्न स्तर पर भी रखना है, तो उसके लिये कम से कम आठ करोड़ रुपये की आवश्यकता हैं। यह धन कहां से आयेगा? हम बहुत दिनों से कहते चले आयें है कि हमें पेट्रोल और मिट्टी के तेल की उत्पाद-बलि तथा चाय की निर्यात-बलि का एक भाग मिलना चाहिये, परन्तु यद्यपि परिस्थिति बहुत बिगड़ गई है, परन्तु अभी तक कुछ नहीं किया गया हैं। मसौदा-समिति ने उस प्राप्त की विशेष दशाओं को जानते हुये भी उसके लिये किसी प्रकार का वर्जन नहीं किया। श्रीमान्, हमने वहां अधिक से अधिक कर लगा दिया हैं। अन्य प्रान्तों की अपेक्षा हमारे यहां करों की दर बहुत अधिक हैं और हमने 4:3 के अनुपात से अपने ऊपर कर लगाया है, जब कि अन्य प्रान्तों में उसका अनुपात 4:9 है। हमने अन्य प्रान्तों से बहुत पहले अपने यहां कृषि-आय पर कर लगाना आरम्भ कर दिया था तथा आमोद-प्रमोद तथा सुख-विलास के साधनों पर भी उनसे पहले कर लगा दिया था परन्तु फिर भी उस प्राप्त की हालत बहुत खराब हैं। और मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि यदि आपको आसाम को वास्तव में भारत में रखना है, तो आपको विधान में उसके लिये कोई विशेष आर्थिक प्रावधान रखना है और उसकी ओर कुछ विशेष ध्यान देना है, अन्यथा उसका दिवाला निकल जायेगा। राजनैतिक दृष्टि से भारत एक है और यदि उसका एक अंग भी सड़ जाये, तो अन्त में उसका सारा शरीर सड़ जायेगा। यदि आप इस समय आसाम को बर्बाद होने देंगे, तो आप देखेंगे कि अन्त में आपको भी वही दशा होगी।

[श्री रोहिणी कुमार चौधरी]

मैं एक और बात की ओर संकेत करना चाहता हूं और वह अनुच्छेद 149 के सम्बन्ध में हैं मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि एक ऐसे संशोधन का सुझाव रखा गया है, जिसे यदि प्रयोग में लाया गया तो एक संकटपूर्ण सिद्धान्त का निरूपण होगा, जिससे एक आम जनसमुदाय एक अत्यंत अल्पसंख्यक समुदाय में परिणत हो जायेगा। मेरा संकेत उस संशोधन की ओर है जिसका सुझाव मसौदा समिति ने रखा है और जो इस प्रकार हैं:-

"That in clause (3) of article 149, after the words 'save in the case of the autonomous district of Assam' the words 'and in case of constituencies having seats reserved for the purposes of article 294 of this Constitution' be substituted".

"(अनुच्छेद 149 के खण्ड (3) में 'आसाम के स्वायत्त-शासी जिलों को छोड़कर, शब्दों के बाद 'और इन निर्वाचन-क्षेत्रों को छोड़ कर, जिनके लिये इस विधान के अनुच्छेद 294 के प्रयोजन के लिये जगहें सुरक्षित रखी गई हैं' शब्द जोड़ दिये जायें।)"

यदि इसको प्रयोग में लाया गया, तो इसका अर्थ यह होगा कि जिन सम्प्रदायों के लिये जगहें सुरक्षित रखी गई हैं, उनके निर्वाचन-क्षेत्र होंगे, जिनकी जनसंख्या एक लाख से कम होगी, परन्तु जनसाधारण के ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र होंगे, जिनकी जनसंख्या एक लाख होगी। इसका अर्थ यह होगा कि सुरक्षित जगहें अधिक वजनी हो जायेंगी, जिसकी कि किसी भी सम्प्रदाय में मांग नहीं की है। प्रान्त में जनसंख्या का अनुपात इस प्रकार है:

पहाड़ी वन-जातियां..	18 प्रतिशत
मुसलमान..	17 प्रतिशत
अनुसूचित जातियां	4 प्रतिशत
और जनसाधारण..	34 प्रतिशत

यह आपने किस प्रान्त में देखा हैं कि वहां के जनसाधारण की जनसंख्या कुछ 74 प्रतिशत जनसंख्या में से 34 प्रतिशत होने पर भी उन सम्प्रदायों को विशेष रूप से वजनी बनाया गया हैं, जिनकी जनसंख्या कुल जनसंख्या की 18 प्रतिशत और 17 प्रतिशत हैं। यदि यह संशोधन स्वीकार किया गया, तो इसका अर्थ यह होगा कि जनसाधारण को अपनी कुछ जगहों से हाथ धोना पड़ेगा और जनसंख्या के आधार पर वे जो कुछ पाने के अधिकारी हैं, उससे उन्हें कम मिलेगा। यह

एक संकटपूर्ण सिद्धान्त है। यद्यपि इस संशोधन में केवल एक ही प्रान्त का उल्लेख हैं परन्तु इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी कि जनसाधारण एक अल्पसंख्यक समुदाय में परिणत हो जायेंगे और उन लोगों को वजन मिल जायेगा, जिनके लिये जगह सुरक्षित रखी गई हैं। जो प्रस्ताव मैंने रखा है उससे वन जातियों की आबादियों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि उनके अपने स्वायत्तशासी जिले होंगे। मुझे तो यह निश्चित रूप से दिखाई देता हैं कि यदि आप एक लाख जनसंख्या के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करते हैं, तो सुरक्षित जगहों के सम्बन्ध में पेचीदगियां पैदा हो जायेंगी। परन्तु इस सम्बन्ध में सबसे अच्छी बात यह होगी कि एक लाख लोगों के निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था से आसाम को छूट दे दी जाये।

मैं एक और बात की ओर संकेत करूंगा, जिसकी कि उपेक्षा की गई है। विधान के मसौदे में औरतों का कहीं भी उल्लेख नहीं हैं। मेरे विचार से चूंकि मसौदा-समिति एक अजीब ढंग की थी और उसमें ऐसे लोग थे, जिनके औरतों से किसी प्रकार के भी पारिवारिक सम्बन्ध न थे, इसलिये उनको इस विषय को उठाने में घबराहट का अनुभव हुआ। इस सभा में औरतों के एक विशेष निर्वाचन-क्षेत्र की कभी भी चर्चा नहीं हुई। मैं यह जानता हूं कि यहां ऐसी महिलायें है, जिनकी पुरुषों की उदारता पर असीम विश्वास है और जिनकी यह विचार हैं कि चाहे उनके लिये विशेष निर्वाचन-क्षेत्र सुरक्षित न रखे जाये, परन्तु वे पर्याप्त जगहें प्राप्त कर सकेंगी। परन्तु इस सभा से बाहर इस प्रकार की भावना नहीं हैं। साधारणतया पुरुषों की उदारता के बारे में महिलाओं का विश्वास उठ गया है। ट्रामों और बसों तक में आजकल के नवयुवक उनका आदर नहीं करते है।

***उपाध्यक्षः** माननीय सदस्य अपने भाषण की काल-सीमा तक पहुंच गये है।

***श्री एम. अनन्तशयनम् आयंगरः** श्रीमान्, मुझे एक व्यवस्था सम्बन्धी आपत्ति करनी हैं। इस प्रकार के विधेयकों के सम्बन्ध में मैंने नियमों में किसी काल-सीमा का उल्लेख नहीं पाया।

***उपाध्यक्षः** वह इस सभा की अनुमति से ही निश्चित की गई थी। पहले दस मिनट का समय रखा गया। फिर यह बढ़ाकर पन्द्रह मिनट कर दिया गया और फिर बीस मिनट कर दिया गया और फिर घटाकर दस मिनट कर दिया गया।

***श्री रोहिणी कुमार चौधरी:** श्रीमान्, मुझे पार्लियामेंट का और दुनियां का जो अनुभव है, उसके आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि औरतों के लिये एक अलग निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था करना बुद्धिमता की ही बात होगी। हम जानते हैं कि जब कोई औरत कोई चीज मांगती है, तो उसे प्राप्त करना और उसे दे देना आसान है, परन्तु जब वह किसी विशेष चीज को मांगती ही नहीं तो यह पता लगाना कठिन होता हैं कि वह क्या चाहती है। यदि आप उन्हें एक अपना निर्वाचन-क्षेत्र दे देंगे, तो वे अपनी दौड़ धूप स्वयं कर लेंगी और बिना सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र में आये हुये ही आपस में स्वयं लड़ लेंगी, वरना यह हो सकता हैं कि कभी हम कमजोरी का अनुभव करें और उनके पक्ष में झुक जाये और उन्हें ऐसी जगह दे दे, जिनके लिये वे अधिकृत ही न हो।

श्रीमती रेणुका राय (पश्चिमी बंगाल: जनरल): श्रीमान्, विधान के मसौदे के मुख्य अंगों में जनतंत्रात्मक संधान के सिद्धान्त सन्निहित हैं और इसलिये वह सभी की प्रशंसा के योग्य है। साथ ही कुछ बातें ऐसी हैं जो मेरे विचार से उसमें स्पष्ट नहीं हैं और कुछ बातें ऐसी हैं कि यदि हमें इस विधान को उन आदर्शों के अनुरूप बनाना हैं, जिनको लेकर भारत ने कई वर्षो तक संघर्ष किया हैं और जो उस लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में सन्निहित है, जिसकी ओर कल हमारे प्रधानमंत्री महादेय ने संकेत किया था; तो हमें उनमें परिवर्तन करना होगा। श्रीमान्, मैं अपने मित्र डा. अम्बेडकर की इस बात से सहमत हूं कि वास्तव में जिस भावना से विधान को प्रयोग में लाया जाये, उसका महत्त्व होता हैं। मेरी यह धारणा है कि कागज का विधान चाहे जैसा भी हो, वास्तव में महत्त्व होना है उस भावना का, जिससे वह प्रयोग में लाया जाता हैं। हम चाहे जैसा भी विधान बनायें, हम इस सम्बन्ध में भविष्यवाणी नहीं कर सकते है कि व्यवहार में वह हमारी आवश्यकताओं और हमारी जाति की अन्तरात्मा के अनुरूप होना या नहीं। इसलिये जैसा कि कल प्रधानमंत्री महोदय ने कहा था कि इस समय विधान को लचीला होना चाहिये। मेरे विचार से अगले दस वर्षो तक ऐसी व्यवस्था होनी चाहिये कि विधान में सीधे-सीधे बहुमत से संशोधन हो जाने चाहिये, ताकि हम अपने अनुभव के आधार पर उसमें परिवर्तन कर सकें।

जहां तक नागरिकता सम्बन्धी खण्ड का प्रश्न है मेरे विचार से उसमें इस प्रकार की निश्चयोक्ति होनी चाहिये कि एकल एक समान नागरिकता होगी और सभी के समान अधिकार और स्वत्व होंगे। चूंकि अधिकारों के साथ कर्त्तव्य भी संलग्न है, इसलिये इस खण्ड में नागरिक के कर्त्तव्यों की भी गणना होनी चाहिये।

मूलाधिकारों के अध्याय में समान अधिकार निर्धारित किये गये हैं। यह कहना ठीक ही है कि राज्य धर्म, जाति और स्त्री-पुरुष के आधार पर नागरिकों के बीच विभेद नहीं करेगा। परन्तु इस देश की परिस्थिति को तथा लोगों की कुछ सम्मितियों को ध्यान में रखते हुये, चूंकि अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय की उदारता से हम पर गहरा प्रभाव पड़ा हैं, मेरे विचार से इस आशय का एक स्पष्ट प्रावधान रखने की आवश्यकता है कि विभिन्न सम्प्रदायों के विवाह और उत्तराधिकार के सामाजिक नियमों के कारण वर्ण या लिंग के आधार पर किसी प्रकार की अयोग्यता उत्पन्न न होगी। निस्संदेह समता के अधिकार का यही अर्थ है, परन्तु कई प्रकार की व्याख्यायें हो सकती हैं, जिनसे अर्थ-भ्रम हो सकता हैं। इसलिये मैं सभा से यह अनुरोध करनी हूं कि इसकी व्याख्या के लिये एक प्रावधान रख दिया जाये।

मेरे माननीय मित्र अनन्तशयनम् आयंगर ने जो कुछ कहा हैं, उसे मैं नहीं दुहराऊंगी, परन्तु जनसाधारण के आर्थिक अधिकारों के सम्बन्ध में मैं यह अनुभव करनी हूं कि कुछ कमी रह गई हैं। यद्यपि मैं इससे सहमत हूं कि यह प्रावधान कि ''कोई व्यक्ति बिना विधि-प्राधिकार के अपनी सम्पत्ति से वंचित न किया जायेगा'' एक अधिकार हैं, परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि न्याय अधिकारों के अधीन इस खण्ड का दूसरा भाग क्यों हो, जिसमें राज्य के अपने हाथ में सम्पत्ति ले लेने पर मुआवजे का तथा कानून के अनुसार लोकहितार्थ प्रयोजनों का ब्यौरा दिया हुआ है। निस्संदेह यदि इसे विधान में स्थान देने की आवश्यकता है, तो इसे निदेशक सिद्धान्तों के अधीन रखना चाहिये और ऐसे अधिकारों के अधीन न रखना चाहिये जो न्याय हैं और न्यायालयों द्वारा व्यवहार्य है। यह ठीक नहीं हैं कि हम भविष्य को वर्तमान की आर्थिक व्यवस्था से बांध दे।

शिक्षा के सम्बन्ध में, जो मेरे विचार से सबसे आधारभूत अधिकारों में हैं, मैं यह अनुभव करती हूं कि बहुत ही अपर्याप्त व्यवस्था हैं। अन्य वक्ताओं ने जो कुछ कहा हैं, उसे मैं दुहराना नहीं चाहती; परन्तु मेरा इस सभा से यह अनुरोध हैं कि एक ऐसा प्रावधान रखा जायें, जिससे आय-व्ययक में निश्चित अनुपात से कोई धनराशि इस उद्देश्य से रखी जा सकें। यह कोई नवीन बात नहीं हैं। चीन के विधान में इस प्रकार की व्यवस्था हैं और उसमें कहा गया है कि:

> ''शैक्षिक नियोजन लेखे में केन्द्रीय सरकार के आय-व्ययक की कुल धनराशि का कम से कम 15 प्रतिशत होगा और प्रान्तों, जिलों तथा नगरों के आय-व्ययकों की कुल धनराशि का कम से कम 30 प्रतिशत होगा''

[श्रीमती रेणुका राय]

यदि हमको समुन्नत तथा सुसम्पन्न होना है, तो मेरा सुझाव यह हैं कि राष्ट्र-निर्माण की दो सेवाओं, अर्थात् शिक्षा और जन-स्वास्थ्य की सेवाओं के सम्बन्ध में विधान में चीन के विधान के समान कोई प्रावधान होना चाहिये।

जहां तक अल्पसंख्यकों के लिये जगहें सुरक्षित रखते का सम्बन्ध है, हमने निस्संदेह एक असाम्प्रदायिक राज्य में पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था नहीं की हैं। परन्तु मेरी समझ में नहीं आता कि हम अल्पसंख्यकों के लिये जगह सुरक्षित रखें ही क्यों। व्यवस्था यह की गई हैं कि दस वर्ष के उपरान्त, जब तक कि किसी संशोधन द्वारा कालावधि बढ़ाई न जायें, यह अधिकार समाप्त कर दिया जायेगा, परन्तु, मनोविज्ञान की दृष्टि से यह ठीक नहीं है। मुझे इसका विश्वास हैं कि यदि यह अधिकार इस समय दिया गया, तो इसको कालावधि बढ़ाने के लिये बड़ा शोर किया जायेगा। यह अल्पसंख्यकों के लिये उचित नहीं हैं और न उनके आत्मसम्मान के अनुरूप ही हैं। यदि यह सभा निश्चित रूप से अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व कराना चाहती है, तो मेरा सुझाव यह हैं कि सामूहिक मतदान के साथ बहुनिर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था हो। कुछ वक्ताओं ने एकल संक्राम्य मत के साथ अनुपाती प्रतिनिधित्व का सुझाव उपस्थित किया है। मेरे विचार से यह विशेषत: भारत के लिये, एक कठिन कार्यप्रणाली सिद्ध होगी और इसलिये मैं इसे स्वीकार करने की सिफारिश नहीं कर सकती। मेरे विचार से सामूहिक मतदान के साथ बहुनिर्वाचन-क्षेत्रों की प्रणाली में कई बातें ऐसी हैं कि उसे स्वीकार करने की सिफारिश की जा सकती है। पहले तो उससे इन अल्पसंख्यकों का ही नहीं, किन्तु अन्य लोगों का भी अच्छी प्रकार प्रतिनिधित्व हो सकता हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली से बिना पृथक्करण की भावना उत्पन्न हुये ही अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व का आश्वासन मिल सकेगा। अन्त में बोलने वाले वक्ता महोदय श्री रोहिणी कुमार चौधरी ने, जिन्होंने अपने को महिलाओं का रक्षक और समर्थक बनाया है और जो उनकी सामाजिक अयोग्यताओं को समाप्त करने के पक्ष में है, औरतों के लिये विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों का सुझाव उपस्थित किया। हमेशा से भारत की नारियां जगहों को सुरक्षित करने और विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था करने के विरुद्ध रही है। सन् 1935 ई. के अधिनियम के प्रयोग में आने के बहुत पहले से ही हम उसके विरुद्ध थीं और हमने किन्हीं अस्पष्ट शब्दों में अपना मतप्रकाश नहीं किया था, परन्तु इस पर भी वह बलपूर्वक प्रयोग में लाया गया और आज स्थिति यह है कि मुझ से पहले बोलने वाले वक्ता महादेय के शौर्यप्रदर्शन को ध्यान में रखते

हुये भी भारत की नारियां विधान में जगहों की इस प्रकार की सुरक्षा को सहन नहीं करेंगी।

अन्य लोगों ने ग्राम-पंचायतों के बारे में जो कुछ कहा है, उसे मैं नहीं दुहराऊंगी। मेरी यह धारणा है कि अज्ञान और अन्धविश्वास से मुक्त होने पर गांधी जी के ढंग की ग्राम-पंचायतें इस देश के विधान की आधारशिला सिद्ध होंगी। मेरे विचार से विधान में कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे इस प्रकार की व्यवस्था के मार्ग में बाधा पड़े।

अब मैं केन्द्र और प्रदेशों के बीच शक्तियों के विभाजन के प्रश्न को उठाती हूं। प्रान्तों को यथासम्भव स्वायत्तशासी बनाने के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। इसके साथ जब देश में, विशेषकर राष्ट्र-निर्माण की सेवाओं में, बहुत क्षति की पूर्ति करनी है, तो संगठन की शक्ति प्रबल होनी चाहिये और केन्द्र को शिक्षा और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में प्रबन्धात्मक और एकीकरण की कुछ शक्ति प्राप्त होनी चाहिये। मेरे विचार से प्रान्तों से कुछ आर्थिक प्रतिभूतियों का अपहरण करके उन्हें अशक्त न बनाना चाहिये। विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों के अनुसार उन्हें आय-कर का कम से कम 60 प्रतिशत देना चाहिये, अर्थात् प्राप्ति के आधार पर 35 प्रतिशत, जनसंख्या के आधार पर 20 प्रतिशत और विपत्ति का ध्यान रखते हुये 5 प्रतिशत देना चाहिये। यह बहुत अच्छी सिफारिश है और मुझे आशा है कि यह सभा इसे विधान में स्थान देने के लिये सहमत हो जायेगी। मेरी यह भी धारणा है कि एक आर्थिक आयोग पांच वर्ष बाद नहीं, बल्कि तुरन्त ही नियुक्त किया जाये।

समाप्त करने के पूर्व मैं एक भाषा-भाषी प्रान्तों के बारे में कुछ कहना चाहती हूं। आज हमारा लक्ष्य एकता ही होना चाहिये। हमारे देश के इतिहास के इस काल में भाषा के आधार पर प्रान्तों की सीमाओं का पुनर्निर्धारण एक त्रुटि ही होगी। इसके कारण इस समय भी बहुत कटुता और कलह उत्पन्न हो गया है और वह उत्तरोत्तर बढ़ता जायेगा। यदि देश के एक भाग में इस प्रकार की व्यवस्था की जाये और अन्य भागों को छोड़ दिया जाये तो यह तो न न्यायपूर्ण होगा और न तर्कपूर्ण। उदाहरणार्थ यदि आप एक महाराष्ट्र प्रान्त बनायें, तो देश के अन्य भाग भी इसी प्रकार की मांग करेंगे। बंगाल में इस प्रकार की कटुता फैली हुई है कि उसने शक्ति के हस्तांतरण के लिये अपने एक भूभाग का बलिदान कर दिया, परन्तु उसे अब भी अपने अधिकार नहीं दिये जा रहे हैं। जब भारतीय स्वतंत्रता का संग्राम छेड़ा गया तो अंग्रेजों की राजनैतिक अवसरवादिता के फलस्वरूप तथा

[श्रीमती रेणुका राय]

विदेशी सरकार के उद्देश्यों की पूर्ति के लिये बंगाल के एक बहुत बड़े भूभाग का बलपूर्वक अपहरण किया गया था। मैं इस सिद्धान्त का समर्थन नहीं करती हूं कि इस समय भाषा के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निर्माण किया जाना चाहिये। यदि ऐसा करना आवश्यक ही हो, तो यह दस वर्ष के बाद किया जाये जब कि लोगों का आवेश शांत हो जाये। परन्तु शासन-प्रबन्ध के लिये तो भाषा के आधार पर पुनर्निर्माण करने की कोई आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक प्रान्त में एक भाषी अल्पसंख्यकों को निस्संदेह यह आश्वासन मिलना चाहिये कि उन्हें अपनी ही मातृ-भाषा में शिक्षा दी जायेगी। मेरा यह अनुरोध है कि भाषाओं के आधार पर सीमाओं को पुनर्निर्धारित करने वाले आयोग को अपना काम रोक देना चाहिये, या कम से कम दस वर्ष के लिये उसे स्थगित कर देना चाहिये। मैं इसे फिर दुहराऊंगी कि यदि हम यह चाहते है कि भारत सशक्त हो, सुसम्पन्न हो और राष्ट्र-मण्डल में अपना यथोचित स्थान प्राप्त करे, तो हमारे सामने सर्वोपरि विचार एकता का ही होना चाहिये।

*__माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त__ (मध्यप्रान्त और बरार: जनरल): श्रीमान्, यह कहा गया है कि संघ की भाषा सरल हिन्दुस्तानी होनी चाहिये और यह कि विधान की भाषा और वह भाषा जिसमें हम अपने कानून बनायेंगे, हिन्दुस्तानी ही होनी चाहिये। मैं इस सरल हिन्दुस्तानी की खोज में रहा। मैं उसे मध्यप्रान्त में न पा सका। मैं उसे कानून की किताबों में न पा सका। मैं उसे इस आदरणीय सभा की सरकारी कार्यवाही के प्रतिवेदनों में न पा सका। इस सभा की सरकारी कार्यवाही के प्रतिवेदन तीन भाषाओं में प्रकाशित होते है। अंग्रेजों, हिन्दी और उर्दू में। मैंने इस विचार से अंग्रेजी का संस्करण पढ़ा, हिन्दी का संस्करण पढ़ा और उर्दू का संस्करण पढ़वाया कि मैं उस भाषा को पा सकूं, जिसे सरल हिन्दुस्तानी कहा जाता है। मैं उसे नहीं देख सका। उर्दू उर्दू थी और हिन्दी हिन्दी। इस प्रकार की कोई चीज न थी, जिसे सरल हिन्दुस्तानी कहा जाता है। मेरे हृदय में यह विचार उठा कि सम्भवत: मैं उसे समाचारपत्रों में पा सकूं। 'तेज लिमिटेड', जिसकी जयंती कुछ दिन पहले मनाई गई थी, दो भाषाओं में समाचारों को प्रकाशित करता है। उसके हिन्दी के पत्र का नाम 'विजय' है और उर्दू के पत्र का नाम 'तेज' है मैंने इन दोनों पत्रों की भाषाओं की तुलना की, फिर भी मैं सरल हिन्दुस्तानी को न पा सका। इन प्रकाशनों के उद्धरण पढ़कर, सुना कर मैं इस आदरणीय सभा का समय नष्ट नहीं करना चाहता। मेरे हाथ में 'विजय' पत्र की एक प्रति है। 'विजय' में सब हिन्दी है और 'तेज' में सब उर्दू है। मैंने विचार किया कि सम्भवत: दिल्ली की प्रारम्भिक पाठशालाओं में सरल हिन्दुस्तानी प्रयोग की जाती हो। मुझे रेखागणित

की दो प्रारम्भिक पुस्तकें मिली। मैं उनमें भी सरल हिन्दुस्तानी को न पा सका। मैंने गणित और भूगोल की भी प्रारम्भिक पुस्तकें देखीं। मैं उनमें भी उस भाषा को न पा सका, जिसे सरल हिन्दुस्तानी कहा जाता है। वे सब या तो उर्दू में लिखी हुई थी, या हिन्दी में। मैं आपको कुछ उदाहरण दूंगा। श्रीमान्, प्रारंभिक गणित है, जिसे हिन्दी में 'गुणन' कहा जाता है उसे उर्दू में 'जरब' कहा जाना है, जिसे हिन्दी में 'गुण्य' कहा जाता है, उसे उर्दू में 'मजरब' कहा जाना है, जिसे हिन्दी में 'गुणक' कहा जाता है, उसे उर्दू में मजरबफी' कहा जाता है। 'गुणनफल' उर्दू में 'हासिल-इ-जरब' कहा जाता है। 'भाजक' को 'मकसूम इलाह' कहा जाता है, 'भाज्य' को 'मकसूम' कहा जाता है, 'भजनफल' को 'खर्फ-इ-किस्मत' कहा जाता है और 'लघुत्तम समापवर्त्य' को 'जुआजाफड-अक्रल' कहा जाता है।

मैं कई उदाहरण दे सकता हूं। अब मैं प्रारम्भिक रेखागणित को लेता हूं। 'तृज्या' को उर्दू में 'निस्फकुतुर' कहा जाता है। 'समद्विबाहुतृभुज' की 'मुसल्लस मुसाबि-उल-साकैन', 'समतृबाहु तृभुज' को 'मुसल्लम' मुसाबि-उल-जिला', 'समकोण समद्विबाहुतृभुज' को 'मुसल्लस मुसाविउस्साकैन कायमुज्जाविया' उर्दू मैं कहा जाता है।

मैं इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दे सकता हूं। मैं इन प्रारम्भिक पाठय पुस्तकों में भी सरल हिन्दुस्तानी को न पा सका। जब हमारी महिलायें तथा हमारे पुरुष उच्च स्वर से यह कहने लगते है कि हम अपने कानूनों को सरल हिन्दुस्तानी में लिख सकते है, तो मैं भ्रम में पड़ जाता हूं। मुझे केवल बाजार में ही सरल हिन्दुस्तानी सुनने को मिली। जब हम प्रारम्भिक पाठ्य-पुस्तकों तक में सरल हिन्दुस्तानी भाषा को नहीं प्रयोग कर सकते, तो हमारे कानून उस भाषा में कैसे लिखे जा सकते है? श्रीमान्, मुझे इतना ही कहना है।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं। तीन दिन से मैं इस विधान के मसौदे पर बोलने के लिये इच्छुक रहा हूं। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि आपने मुझे चन्द मिनटों के लिये बोलने का अवसर दिया है।

मैं आरम्भ में मसौदा-समिति के विधान के मसौदे में आद्योपान्त जिस उच्च कोटि की कानूनी भाषा का प्रयोग किया है, उसके लिये उसे धन्यवाद देता हूं

[श्री महावीर त्यागी]

और बधाई भी देता हूं। मैं मसौदा-समिति की आलोचना नहीं करना चाहता हूं। उन्होंने बड़ी योग्यता से अपना कार्य सम्पन्न किया हैं हमने समय-समय पर विधान-सम्बन्धी जिन सिद्धान्तों को उनके सामने रखा था, उनका उन्होंने संकलन किया है और सिहांवलोकनार्थ हमारे सामने एक सम्पूर्ण चित्र उपस्थित किया है।

श्रीमान्, जब हम सबसे पहले भारत के विधान का चित्र बनाने बैठे थे, तो हमारे सामने एक खाली पर्दा खिंचा हुआ था और हममें से बहुत से वास्तव में नहीं जानते थे कि किस तरफ से आरम्भ करें और कौन से रंग काम में लायें। यह इन प्रतिभाशाली कानून-विशेषज्ञों की ही योग्यता का फल है कि आज हमारे सामने एक सम्पूर्ण चित्र उपस्थित है। जब आप किसी कलाकार की रचना की परख करना चाहें, तो आपको उसके सम्बन्ध में एक साधारण आदमी से पूछना चाहिये। यदि वह साधारण आदमी को अच्छा लगता है तो वह अच्छा है। मेरी तो कसौटी यही है। कानून-विशेषज्ञों ने अपना कार्य समाप्त कर दिया है और सम्पूर्ण चित्र हमारे सामने है। एक साधारण आदमी की हैसियत से उसके सम्बन्ध में मैं अपने विचार आपके सामने रखता हूं। जब यह काम मसौदा-समिति को सौंपा गया था, उस समय की परिस्थिति में और आज की परिस्थिति में बहुत अन्तर है। यह हमारा बहुत बड़ा दुर्भाग्य है कि भारत के इतिहास में जो दीपक हमारे हृदयों की स्वतंत्रता की सहानुभूति से प्रकाशित किये हुए था वह बुझा दिया गया और हम खेद के समुद्र में जलमग्न हो गये। इसके अतिरिक्त आबादियां बदल गई और देश की सारी आकृति ही बदल गई। बहुत कुछ लोगों की विचारधारा भी बदल गई। अब उसी पुराने चित्र खींचने का अर्थ यह होगा कि हम वर्तमान काल की उपेक्षा कर रहे है। हमें वर्तमान वातावरण, वर्तमान परिस्थिति और विकासशील विचारधाराओं को ध्यान में रखना चाहिये। इसलिये श्रीमान, हमें इस चित्र की परीक्षा उस प्रकाश में करनी चाहिये, जिसमें कि हमें स्वतंत्रता की प्राप्ति हुई है। वास्तव में हमें उसे गांधी जी के दृष्टिकोण से परखना चाहिये और उसे उसी प्रकार देखना चाहिये, जैसे वे स्वयं देखते। अब उनकी दृष्टि हमारे बीच से उठ गई है, किन्तु इस सभा में ऐसे व्यक्ति उपस्थित है जिनको उनकी दृष्टि का प्रकाश कुछ अंश में प्राप्त है हम सब इसका फिर से स्मरण कर सकते है कि गांधीजी की स्वराज्य की कल्पना क्या थी। इसको न भूलना चाहिये कि वह विधान-परिषद् उन लोगों के अथक परिश्रम के फलस्वरूप निर्मित हुई, जो तीस वर्ष तक रात-दिन स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये सचेष्ट रहे। यह उन्हीं के पुरुषार्थ का फल है। वास्तव में उन्हीं

को हमारे लिये विधान बनाना चाहिये था। वही विधान बनाने में समर्थ है। विधान को तो होना चाहिये था केवल क्रांतिकारियों की कृति। परन्तु चूंकि इस सभा का निर्माण अंग्रेजों के हाथों से हुआ, इसलिये हम अन्य सम्भावनाओं की कल्पना नहीं कर सकते और इसीलिये यह विधान पूर्णतया गांधीवाद के अनुरूप न हो सका। मैं इसे स्वीकार करता हूं। परन्तु चूंकि हमारा बहुमत है, इसलिये हमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि कहीं गांधीजी की मृत्यु के बाद तुरन्त ही उनकी विचारधारा का लोप न हो जाये।

मुझे यह स्वीकार करना चाहिये कि मुझे इस विधान को देख कर बहुत निराशा हुई है। मुझे इसमें गांधीवाद की एक भी झलक नहीं दिखाई देती। इसमें मसौदा समिति का कोई दोष नहीं है। हम ही इसके लिये दोषी है। जब हमने इस विधान के सम्बन्ध में सिद्धान्तों को निश्चित किया, तो हमने उन लोगों के सामने कुछ आधारभूत सिद्धान्त रखे, जिनके अनुसार वे अपना निर्माण कार्य कर सकें। परन्तु अब परिस्थिति वह नहीं है जो कि उस समय थी। जब हमने विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधित्व, भाषा तथा अन्य विवादग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में निश्चय किया तो हमने इसे भी ध्यान में रखा कि हमारे निश्चय की पाकिस्तान में क्या प्रतिक्रिया होगी। पाकिस्तान अपने अल्पसंख्यकों के प्रश्नों से पूर्णतया मुक्त हो गया है। वहां ये प्रश्न लुप्त हो गये है कि यहां भी जो जटिल प्रश्नाकार थे, जो किसी न किसी बहाने से हमसे लड़ते रहे, वे अपनी मातृ-भूमि भारत को छोड़कर उस पार एक सौतेली मां के पास चले गये है। अब हमारे बीच में केवल वे मुसलमान, सिक्ख और अन्य लोग रह गये है, जो भारत को अखण्ड देखना चाहते है। भारत आज अखण्ड है और इसलिये हमारा विधान वर्तमान परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिये।

इसलिये श्रीमान्, जब मैं इस चित्र को गांधीजी के दृष्टिकोण से देखता हूं, तो मैं मुख्यत: एक चीज का अभाव पाता हूं। गांधीजी इस देश में पूर्ण रूप से मद्यनिषेध के लिये बहुत इच्छुक थे, परन्तु इस विधान में इस सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं कहा गया है। हमने निर्वाचकों को जो वचन दिये थे, उनको केवल मद्रास में और कुछ अन्य प्रान्तों में पूरा किया गया है गांधीजी को इसकी बड़ी चिंता थी कि सारे भारत में पूर्णतया मद्यनिषेध होना चाहिये। मेरा यह सुझाव है कि विधान में हस्ताक्षर करने के पहले हमें गांधीजी के इस विचार को उसमें स्थान दे देना चाहिए।

[श्री महावीर त्यागी]

इसके अतिरिक्त श्रीमान्, गांधीजी की यह प्रबल इच्छा थी कि घरेलू उद्योग-धंधों को स्वावलम्बी बनाकर संगठित किया जाये। उनके रचनात्मक कार्यक्रम में इसका प्रथम स्थान था। इस विधान में इसका भी अभाव है। मैं एक कट्टर गांधीवादी हूं और इसमें संदेह नहीं कि मैं समाजवादी नहीं हूं और इसीलिये मैं सभी बड़े-बड़े उद्योग-धंधों को समाप्त करने के पक्ष में नहीं हूं। आज की परिस्थिति में देश के विभिन्न उद्योग-धंधों से बड़ी सहायता मिल रही है। परन्तु यदि उन्हें कभी समाप्त करना हो, तो उन्हें एक साथ ही समाप्त कर देना चाहिये। आप समाजवाद को धीरे-धीरे एक उद्योग के बाद दूसरे उद्योग का समाजीकरण करके नहीं ला सकते है। जब समाजवाद का आगमन हो तो उसे एकबारगी सभी चीजों पर छा जाना चाहिये। यदि समाजवाद का एकबारगी आगमन हो तो उससे किसी को कोई क्षति न होगी, क्योंकि एक तरफ से क्षति होगी तो दूसरी तरफ से लाभ भी होगा; क्योंकि सभी सम्पत्ति पूर्णतया सामाजिक सम्पत्ति हो जायेगी। विधान के मसौदे में यह कहना कि लोगों को बिना न्यायोचित मुआवजा दिये हुये उनको अपनी सम्पत्ति से वंचित न किया जायेगा, यह अर्थ रखता है कि भारत में स्थायी स्वार्थ चिरस्थायी हो जायेगा। आज स्थिति यह है कि घास का भी कोई पत्ता ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी का न हो। धूल का एक कण भी ऐसा नहीं है, जो किसी न किसी का न हो। यदि आने वाली पीढ़ियां सभी सम्पत्ति का और उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण करना चाहें, तो इस विधान के अनुसार उन्हें हर एक घास के पत्ते के लिये और हर एक धूल के कण के लिये मुआवजा चुकाना होगा। मैं यह जानना चाहता हूं कि वे इस सब सम्पत्ति का मुआवजा कहां से चुकायेंगे? वह तो मुआवजा मांगने वाले लोगों के ही साथ में रह जायेगी। इस प्रकार मुआवजा देना असम्भव हो जायेगा। गांधीजी का तो कहना यह था कि धनिकों को अपने को सम्पत्ति का केवल धरोहरी समझना चाहिये। वे उस सीमा तक कभी नहीं गये थे, जिस सीमा तक हम इस विधान के मसौदे में जा रहे है। इसलिये श्रीमान्, मैं यह कहना चाहता हूं कि इस विधान पर हस्ताक्षर करने के पहले हमें यह देखना चाहिये कि कहीं हम भारत में रक्तपूर्ण क्राति के बीज तो नहीं बो रहे है। यदि क्रांति से देश को बचाना है, तो हमें आने वाली पीढ़ियों के लिये दरवाजा खुला रखना चाहिये, जिससे यदि उनकी इच्छा हो तो वे सभी स्थायी स्वार्थो और देश में उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण कर सकें। यदि हम भविष्य में समाजीकरण न होने देने के उद्देश्य से दरवाजा बन्द कर दें, जैसा कि हमने अनुच्छेद 24(2) के द्वारा किया है, तो मैं यह कहूंगा कि भारत के युवा उठ खड़े होंगे और दरवाजा खटखटायेंगे और उसे तोड़ गिरायेंगे और इसका परिणाम

होगा रक्तपूर्ण क्रांति (वाह वाह) इसलिये श्रीमान, मेरा यह आग्रह है कि हमें इस पूरे उपखण्ड को निकाल देना चाहिये, ताकि भविष्य में पार्लियामेंट बिना मुआवजा दिये हुये सभी सम्पत्ति और उत्पादन के सभी साधनों का समाजीकरण कर सकें। श्रीमान्, यह कहना भी एक गलती है कि हमारी सभा एक सर्वसत्ताधारी सभा है। मेरे विचार से हम उस अथे में सर्वसत्ताधारी नहीं है, जिस अर्थ में किसी विधान-परिषद् को होना चाहिये। हमारी सर्वसत्ता उसी प्रकार की है, जिस प्रकार भारत में अंग्रेजों की थी। वह हस्तांतरित सर्वसत्ता है। वास्तविक सर्वसत्ता तो उस पार्लियामेंट की होगी, जो प्रौढ़ मताधिकार के प्रयोग में आने पर अस्तित्व में आयेगी। इसलिये इस प्रकार के प्रश्नों को हल करने के लिये वही पार्लियामेंट नैतिक तथा वैधानिक रूप से अधिक अधिकृत होगी।

अब मैं अल्पसंख्यकों के प्रश्न को उठाता हूं। मुझे इसका खेद है कि डा. अम्बेडकर ने यह कहा है कि अल्पसंख्यक एक विस्फोटक शक्ति है, जिसका विस्फोट होने पर राज्य का सारा ढांचा गिर पड़ेगा। मेरा यह कहना है कि ये अल्पसंख्यक इस प्रकार की कोई बात नहीं कर सकते। इसका सीधा-साधा कारण यह है कि ये वास्तविक नहीं है, ये केवल काल्पनिक है और इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है। मैं उनको चुनौती देता हूं। उन्हें यहां पृथक् प्रतिनिधित्व पाने का कोई अधिकार नहीं है। वे किसका प्रतिनिधत्व करेंगे? काल्पनिक अल्पसंख्यकों का सृजन अंग्रेजों ने किया था। अनुसूचित जातियां अल्पसंख्यक कदापि नहीं कहें जा सकते। केवल इस कारण कि कुछ गरीब वर्गो की एक साथ एक अनुसूची में गणना की गई है, उनको ''अनुसूचित अल्पसंख्यक'' नहीं कहा जा सकता। ये अल्पसंख्यक केवल कागज में लिखे हुये अल्पसंख्यक है। इनको अब चिरस्थायी बनाने का प्रयास इसलिये किया जा रहा है कि इनमें से कुछ अवसरवादी परिवार विधान-मण्डलों में अपनी जगहों को सुरक्षित रखना चाहते है। वे लोग जो अपने को अल्पसंख्यक कहने में हर्षित होने थे, यहां से चले गये है। वही लोग अब यहां है जिनका विश्वास एक राज्य में है। इसलिये श्रीमान्, अब कोई अल्पसंख्यक समुदाय नहीं है और इस विधान में अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के बारे में कोई प्रावधान न होना चाहिये, क्योंकि इससे अभी तक तथाकथित अल्पसंख्यकों का ही विनाश हुआ है। मुसलमानों को ही लीजिये। मैं यह जानता हूं कि उनकी भावनाऐं क्या है और मैंने देहरादून में अपनी आंखों से देखकर इसका अनुभव किया है। आज उनका नैतिक बल बिल्कुल नष्ट हो गया है। वे नागरिकता के साधारण अधिकारों का भी उपयोग करने के लिये अपने में नैतिक स्वतंत्रता नहीं पाते। पिछले दिनों में उनका गलत नेतृत्व होने के कारण आज वे इतने कायर हो गये है कि वे भारत

[श्री महावीर त्यागी]

में किसी जगह सीधे खड़े भी नहीं हो सकते। इसलिये श्रीमान्, मैं अनुसूचित जातियों, सिक्खों, मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों और हिन्दुओं से भी यह कहूंगा कि वे अपने लिये जगहें सुरक्षित रखने की मांग न करें। हमारा एक असाम्प्रदायिक राज्य है हम लोगों के किसी धार्मिक समूह को न तो स्वीकृति प्रदान कर सकते हैं और न उसको कोई वजन दे सकते है। यदि वे विभिन्न जातियों के होते, तो उनका बहुमत या अल्पमत होने के कारण उनकी जो मांगें होती, वे मेरी समझ में आ सकती थीं। विश्वास और धर्म तो एक व्यक्तिगत चीज़ है। मैं डा. अम्बेडकर के इस दावे का भी खण्डन करता हूं कि भारत में बहुसंख्यक साम्प्रदायिक आधार पर बहुसंख्यक है। बहुसंख्यक तो वास्तव में कांग्रेस है, जो एक राजनैतिक संस्था है।

श्रीमान्, एक शब्द मैं गांवों के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं। डा. अम्बेडकर ने यह कहा कि उन्हें इसका हर्ष है कि ''मसौदा-समिति ने ग्रामों को कोई स्थान नहीं दिया है।'' उन्होंने उनका ''कूपमण्डूकता के गड्ढे और साम्प्रदायिकता के अड्डे'' कहकर वर्णन किया है। दासत्व के इन्हीं गड्ढों में स्वतंत्रता-संग्राम के दिनों में दमन-चक्र चल रहा था। जब चिमूर में दासत्व के इन गड्ढों में उत्पीड़न हो रहा था और अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, तो स्वतंत्रता के ये स्तूप अंग्रेजों की पीठ पर मालिश कर रहे थे। (वाह वाह) गांवों के विरुद्ध डा. अम्बेडकर ने जो कुछ कहा है, उसके विरुद्ध जब तक मैं अपनी आवाज़ नहीं उठाता हूं, तब तक मैं अपने गांवों के लोगों के सामने जाकर मुंह नहीं दिखा सकता। डा. अम्बेडकर को यह पता नहीं है कि स्वतंत्रता-संग्राम में गांवों ने कितना बलिदान किया है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि देश के शासनकार्य में गांव वालों का यथोचित भाग होना चाहिये। यदि उन्हें उनका यथोचित भाग न दिया गया, तो मैं यह कहूंगा कि इसकी प्रतिक्रिया अवश्य होगी। श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं। (*हर्षध्वनि*)

***बी. पोकर साहब बहादुर** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान्, इस प्रस्ताव पर कुछ शब्द बोलने का जो अवसर आपने मुझे दिया है, उसके लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। सबसे पहले मैं भाषा के प्रश्न की ओर संकेत करना चाहता हूं। जब मैंने इस सम्मानित सभा में पहले प्रवेश किया तो मैंने यह अनुभव किया कि इस सभा की कार्यवाही को न समझ सकते के कारण मेरे सामने एक बहुत बड़ी अयोग्यता है। फिर मुझे ज्ञात हुआ कि इस सभा के एक बहुत बड़े भाग की

वही दुखद स्थिति है और मेरे हृदय में यह विचार उठा कि यह विधान-परिषद् जो इस देश के करोड़ों लोगों के भाग्य का हमेशा के लिये निर्णय करने जा रही है, इस प्रकार अपना कार्य-संचालन कर रही है कि उससे न इस सभा का ही और न राष्ट्र का ही सम्मान हो सकता है। हम अपना कार्य चलाते आ रहे है और कई महत्त्वपूर्ण और सारपूर्ण विषयों पर बोलने आ रहे है, परन्तु हममें से प्रत्येक एक दूसरे को नहीं समझ पा रहा है। यह वास्तव में एक बड़े दुर्भाग्य की बात है। मैंने इसके विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई थी, परन्तु मैं यह कहूंगा कि मैं असफल रहा। अब भी वह अयोग्यता वर्तमान है, परन्तु वह अब उस सीमा तक नहीं है, जिस सीमा तक पहले थी और मुझे इसकी प्रसन्नता है कि कम से कम यह अयोग्यता जितनी पहले थी, उतनी अब नहीं रही।

श्रीमान्, विधान के मसौदे में यह प्रवाहित है कि सरकारी भाषायें हिन्दी और अंग्रेजी होगी। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि इससे भी भ्रम उत्पन्न हो जायेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसकी व्यवस्था है कि किसी भाषा में दिये हुये सभी भाषणों का सार दूसरी भाषा में दिया जायेगा, परन्तु इसे अभी प्रवाहित करना है कि यह किस सीमा तक किया जायेगा और इसे करने की क्या प्रणाली होगी।

श्रीमान्, मेरा निवेदन यह है कि कुछ निश्चित समय के लिये, चाहें वह दस वर्ष हो या पन्द्रह वर्ष, यह प्रवाहित करता अत्यन्त आवश्यक है कि सरकारी भाषा अंग्रेजी ही रहेगी। हम किसी कारण से अंग्रेजी भाषा से घृणा नहीं कर सकते है। वास्तव में उस भाषा द्वारा हमने जो संस्कृति प्राप्त की है, उसके लिये हमें कृतज्ञ होना चाहिये। वास्तव में हमने जो स्वतंत्रता प्राप्त की है, उसके लिये हमने जो आन्दोलन किया, उसमें अंग्रेजी भाषा ने और उसके द्वारा हमने जो संस्कृति प्राप्त की उसने बहुत योग दिया। इसलिये मेरे विचार से इस भाषा में कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे हम घृणा करें और विशेषतया जब कि हमने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर ली है, तो हमें इसका अधिकार है कि संसार के किसी भाग में भी यदि किसी राष्ट्र में कोई बहुत अच्छी बात है, तो हम उसे स्वीकार कर लें। मैं यह भी कहूंगा कि किसी भाषा पर किसी का अपना स्वामित्व नहीं है। अंग्रेजी भाषा के सम्बन्ध में अंग्रेज यह नहीं कह सकते कि यह हमारी ही भाषा है और इस पर हमारा एकाधिकार है और इसी प्रकार हम हिन्दी को अपनी ही भाषा नहीं कह सकते। संसार में कई भाषायें है और हमें इसका अधिकार है कि हम

[बी. पोकर साहब बहादुर]

उनमें से प्रत्येक को प्रयोग में लायें। इस प्रकार हमें अंग्रेजी भाषा प्रयोग करने का अधिकार है और जब तक हमारी राष्ट्रभाषा ऐसी न हो जाये कि उसे हमारे देश के जनसाधारण समझने न लगें, हमें उसे स्वीकार करना चाहिये। जब तक वह स्थिति न आ जाये, हमें अंग्रेजी को ही सरकारी भाषा रहने देता चाहिये, ताकि पार्लियामेंट में आने वाले प्रत्येक सदस्य की समझ में अन्य सदस्यों की बातें आ सकें। निस्संदेह कोई बिरले सदस्य होंगे ऐसे भी हो सकते है, जो अंग्रेजी भाषा से परिचित न हो, परन्तु उनमें से अधिकांश अंग्रेजी जानेंगे और इसलिये श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि कम से कम पन्द्रह वर्ष तक सरकारी भाषा अंग्रेजी ही रहने देनी चाहिये। इस काल में राष्ट्र अपनी राष्ट्र-भाषा अंगीकार करने के लिये तैयार हो जायेगा।

अब श्रीमान्, प्रश्न यह है कि राष्ट्रभाषा का स्वरूप क्या होना चाहिये? इसे इस आदरणीय सभा को हल करता है। मैं आरम्भ में ही यह बता देना चाहता हूं कि मैं न हिन्दी जानता हूं न उर्दू और न हिन्दुस्तानी। इसलिये मैं इस प्रश्न पर तटस्थ होकर विचार कर रहा हूं। यह कहना बहुत कठिन है कि इस देश के लोग एक ही दिन में हिन्दी भाषा को सीख सकते हैं। निस्संदेह हमारी एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिये, परन्तु इसे सीखने को व्यवस्था करके हमें राष्ट्र को इसे स्वीकार करने के लिये तैयार करना चाहिये। अब यदि हिन्दी का अनिवार्य रूप से सरकारी भाषा बता दिया जाता है, तो यह प्रश्न उठेगा कि प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर जो चुनाव होंगे, उनके लिये जो उम्मीदवार खड़े होंगे, उनकी सर्वप्रथम योग्यता यह होनी चाहिये कि उन्हें हिन्दी का ज्ञान हो। मेरे विचार से यदि यह हुआ और हिन्दी का ज्ञात ही उम्मीदवारों को परखने की कसौटी हुई तो इससे देश का अहित ही होगा।

मैं इस सम्बन्ध में अब अधिक नहीं बोलना चाहता हूं, क्योंकि मेरे पास बहुत कम समय है। मेरा केवल यह निवेदन है। मेरा सुझाव यह है कि इस आदरणीय सभा को केवल इस कारण हिन्दुस्तानी के पक्ष में निश्चय करना चाहिये कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का यही पवित्र मत था। वे इस भाषा-सम्बन्धी विवाद से अच्छी तरह परिचित थे और वे यह भी जानते थे कि उनका राष्ट्र कैसा है। बहुत सोच-विचार के बाद ही उस महान् पुरुष ने यह मत प्रकट किया कि नागरी और फारसी लिपियों के साथ हिन्दुस्तानी ही सरकारी भाषा होनी चाहिये। मुझे आशा है कि यह सम्मानित सभा देवनागरी और उर्दू लिपियों के साथ हिन्दुस्तानी

को सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार करके उस महापुरुष की स्मृति का आदर करेगी।

श्रीमान्, यदि हम उनके परामर्श को न मानें, तो संसार हमसे यह कह सकता है कि महात्मा जी के प्रति हमारी श्रद्धा और भक्ति केवल मौखिक ही है और इससे अधिक कुछ नहीं है। हमें इस अभियोग से बचना चाहिये कि महात्माजी की मृत्यु के कुछ ही दिनों बाद उनके विचारों तथा उनकी इच्छाओं को जमीन में सैकड़ों गज नीचे दफना दिया गया। कम से कम उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिये श्रीमान्, मेरा आपसे तथा इस सभा के सभी सदस्यों से यह अनुरोध है कि वे हिन्दुस्तानी को ही सरकारी भाषा के रूप में स्वीकार करने के पक्ष में मतदान करें।

अब श्रीमान्, मैं एक दूसरे प्रश्न को उठाता हूं और वह व्यक्तिगत स्वातंत्र्य के सम्बन्ध में है। हाल में हमने अध्यादेशों के प्रवर्त्तन की शक्ति के बारे में बहुत कुछ सुना है और यह भी सुना है कि विभिन्न सरकारें उसे प्रयोग में ला रही हैं। मैं विशेषतया उस स्थिति से पूर्णतया परिचित हूं, जिसके अधीन मद्रास प्रेजीडेंसी में अध्यादेश द्वारा परिचालित शासन का प्रवर्त्तन हुआ। विधान-मण्डल सभा सत्रस्थ थी। एकाएक एक दिन संध्या को उसका सत्रावसान हो गया और दूसरे ही दिन प्रातःकाल को अध्यादेश का यह बम फटा, जिससे दंडविधि संग्रह की धारा 491 के अधीन बन्द्युपस्थापन का आदेश निकालने के उच्च न्यायालय के अधिकार का भी अपहरण हो गया। मैं यह दिखाने के लिये इसकी ओर संकेत कर रहा हूं कि यदि अध्यादेश निकालने की शक्ति सुरक्षित रही तो, इस शक्ति का दुरुपयोग होने की बहुत सम्भावना है, जिससे नागरिकों की स्वतंत्रता पर मनमाने ढंग से आघात होगा। इन अध्यादेशों के अधीन हजारों लोग भेड़ बकरियों की तरह बन्दी बना दिये गये और उनसे यह तक न कहा गया कि उनके विरुद्ध क्या अभियोग है और वे क्यों नजरबन्द है, जैसा कि कम से कम जनसुरक्षा अधिनियम के अधीन किया जाना चाहिये था। इस सम्बन्ध में मैं इस सभा से यह प्रार्थना करता हूं कि वह ऐसी व्यवस्था करे कि नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय की शक्तियों का किसी प्रकार अपहरण न हो। न किसी विधान-मण्डल को और न किसी सरकार को कोई ऐसा कानून या अध्यादेश पार करने देना चाहिये, जिससे नागरिकों की स्वतंत्रता की रक्षा के सम्बन्ध में उच्च न्यायालय को शक्ति का अपहरण हो। यह एक आधारभूत बात है। जब अंग्रेजों का राज्य था और वे बिना मुकदमा चलाये हुये लोगों को नजरबन्द कर लेते थे

[बी. पोकर साहब बहादुर]

तो हम गला फाड़-फाड़ कर उसका विरोध करते थे। मैं यह कहूंगा कि यह एक पवित्र अधिकार है और मूलाधिकारों में यह प्रवाहित होना चाहिये कि कोई व्यक्ति, चाहे उसका धर्म और राजनैतिक विचार कुछ भी क्यों न हो, तब तक बन्दी न बनाया जाये जब तक कि उसके विरुद्ध मुकद्दमा न चलाया जाये और न्यायालय इस सम्बन्ध में निर्णय न करें। यह एक पवित्र अधिकार है और इससे कोई नागरिक वंचित न किया जाना चाहिये। यह कहा जा सकता है कि सद्यस्कृत्यस्थिति उत्पन्न हो सकती है। यदि सद्यस्कृत्यस्थिति उत्पन्न भी हो जाये, तो उच्च न्यायालय को यह शक्ति होनी चाहिये कि वह सम्बन्धित व्यक्ति पर मुकदमा चलाने की व्यवस्था करे। उसे मुकदमे का फैसला होने के बाद ही नजरबन्द किया जाना चाहिये। विधान-मण्डल अथवा सरकार को ऐसा कानून बनाने या अध्यादेश निकालने की शक्ति न देनी चाहिये, जिससे बिना किसी न्यायालय के सम्मुख किसी नागरिक के विरुद्ध मुकदमा चलाये हुये वे उसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अपहरण कर सकें। इसलिये मैं इस सभा से यह प्रार्थना करता हूं कि मूलाधिकारों में यह प्रावधान रखना चाहिये कि प्रत्येक नागरिक की स्वतंत्रता की रक्षा होनी और वह बिना किसी न्यायालय के सम्मुख मुकदमा चलाये हुये बन्दी न बनाया जायेगा।

श्रीमान्, मैं एक शब्द और कहना चाहता हूं और वह उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के सम्बन्ध में है। आज प्रातःकाल जब संधान-न्यायालय के मुख्य न्यायधीश तथा विभिन्न न्यायालयों के मुख्य न्यायधीशों द्वारा उपस्थित स्मृतिपत्र हमको दिया गया, तो उसे पढ़कर मैंने यह अनुभव किया कि वर्तमान वेतनों के बनाये रखने के सम्बन्ध में उनका मत तर्कयुक्त है। ये वेतन 70 वर्ष पूर्व निश्चित किये गये थे। उसके बाद जो कुछ भी हुआ उसके कारण उनको बनाये ही रखना चाहिये न कि कम करता चाहिये। रुपये की क्रय शक्ति कम हो गई है, आय-कर बढ़ा दिया गया है और आधुनिक जीवन बहुत धन-साध्य हो गया है। न्यायधीशों के सम्मान को बनाये रखने के लिये तथा उनको किसी प्रलोभन में न पड़ने देने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि उच्च न्यायालय के न्यायधीशों के वर्तमान वेतनों में कमी न की जाये।

श्रीमान्, मैं केवल एक मिनट और लूंगा। मैं एक बात को केवल कह भर देना चाहता हूं। मैंने अपनी इस धारणा को प्रकट किया है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा केवल पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों से हो सकती है। मैं इसकी व्याख्या नहीं करूंगा। मैं यह जानता हूं कि इस प्रस्ताव पर इस सभा में विचार हो चुका

है और उसने इसके विरुद्ध अपना मत प्रकट किया मुझे यह ज्ञात है कि इस समय भी यह सभा इसके विरुद्ध होगी। परन्तु मेरी सच्ची भावना यही है कि अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा करने का यही एक उचित उपाय है और मैं इस सभा से अनुरोध करता हूं कि वह इस प्रस्ताव पर तटस्थ होकर विचार करे। यदि किसी कारण यह व्यावहारिक न समझा जाये और इस सभा की यह धारणा ही कि वह इससे सहमत नहीं हो सकती है, तो जगहों को सुरक्षित रखना परमावश्यक है। मैं इसके कारण नहीं बताना चाहता। चाहे कुछ भी हो, जगहों को सुरक्षित करना आवश्यक है। एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व अथवा सामूहिक मतदान के साथ बहु निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था कुछ अन्य उपचार हो सकते है। परन्तु मैं केवल यही कहूंगा कि पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों की व्यवस्था ही उचित उपचार है और इसी प्रणाली से अल्पसंख्यकों की रक्षा हो सकती है। परन्तु यदि वह व्यावहारिक न हो, तो जगहों को सुरक्षित रखना आवश्यक है। कम से कम अन्य प्रणालियों की परीक्षा की जानी चाहिये। एकल संक्राम्य मतदान के साथ अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर निर्वाचन करने की प्रणाली एक पेचीदी प्रणाली सिद्ध होगी, वरना मैं उसे पसन्द करता।

श्रीमान्, मैं आपको धन्यवाद देता हूं।

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, चूंकि मैं इस वादानुवाद के अवसान काल में बोलने के लिये उपस्थित हुआ हूं, इसलिये मैं शायद ही किसी नये विषय को छेड़ सकूंगा। परन्तु मेरे हृदय में यह विचार उठा कि अपने कुछ विचारों को व्यक्त करके मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करता चाहिये।

डा. अम्बेडकर ने जिस विद्वत्ता और तेजस्विता से विधान के मसौदे की व्याख्या की है, उसके लिये वे इस सभा के धन्यवाद के पात्र हैं उन्हें इस मसौदे के प्रावधानों के लिये इसलिये धन्यवाद नहीं दिया जा सकता कि उन्होंने इनकी रचना नहीं की है। माननीय सदस्यों को यह स्मरण होगा कि विधान के मसौदे के अधिकांश खण्डों पर इसी सभा में विचार-विमर्श हुआ और उनके सम्बन्ध में यही निर्णय किया गया। केवल कुछ विषयों के समावेश का कार्य मसौदा-समिति पर छोड़ दिया गया। परन्तु उन्हें व्यवस्थित रूप देने के लिये वे इस सभा के धन्यवाद के पात्र हैं।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

श्रीमान्, मुझे इसका खेद है कि गांवों के सम्बन्ध में तथा बहुसंख्यकों के प्रकार और 'वैधानिक नैतिकता' के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने जो बातें कहीं और जो सम्मति प्रकट की, उसमें वे बहुत आगे बढ़ गये और उन्होंने इस सभा की इच्छाओं और भावनाओं का कुछ भी विचार नहीं किया। गांवों के प्रश्न के सम्बन्ध में माननीय सदस्यों ने बहुत कुछ कहा है। मैं केवल इतना और कहना चाहता हूं। वे कहते है: "मुझे इसकी प्रसन्नता है कि मसौदे में गांव का परित्याग कर दिया है और व्यक्ति को इकाई के रूप में स्वीकार किया गया है।" मैं उनसे पूछना चाहता हूं कि गांवों से भिन्न व्यक्ति है ही कहां? जब वे यह कहते है कि गांवों का परित्याग कर दिया गया है और व्यक्ति पर विचार किया गया है, तो वे इसे अपनी सुविधा के लिये भूल गये है कि व्यक्तियों को ही लेकर तो गांव बनते है और ऐसे ग्रामीणों की संख्या, जो हमारे मतदाता है, लगभग 90 प्रतिशत है।

उन्होंने एक और बात की ओर संकेत किया है और वह बहुसंख्यकों के प्रकार के सम्बन्ध में है। वे कहते है—"अल्पसंख्यकों ने स्वामिभक्ति से बहुसंख्यकों के शासन को स्वीकार किया है, यद्यपि वे साम्प्रदायिक आधार पर बहुसंख्यक है न कि राजनैतिक आधार पर।" मेरी समझ में नहीं आता कि उनके मस्तिष्क में क्या है? राजनैतिक स्तर पर और सरकारी स्तर पर केवल एक दल कार्यशील रहा है और वह है भारतीय कांग्रेस; परन्तु वह एक बिल्कुल ही असाम्प्रदायिक संगठन और राजनैतिक दल है। इस पर भी डा. अम्बेडकर कहते है कि "वे साम्प्रदायिक आधार पर बहुसंख्यक है।" यह सच नहीं है। मैं यह कहूंगा कि ये शब्द गलत है, भ्रामक है और दुष्टतापूर्ण है। मैं चार बातों के सम्बन्ध में बोलना चाहता हूं, अर्थात् सरकार के स्वरूप के बारे में, अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर, भाषा के प्रश्न पर और प्रौढ़ मताधिकार तथा निर्वाचनों के बारे में। मैं यह जानता हूं कि जितना थोड़ा सा समय मेरे पास है, उसमें मैं इन प्रश्नों पर विस्तार से नहीं बोल सकता; किन्तु मैं इनके कुछ अंगों की चर्चा करूंगा।

डा. अम्बेडकर ने कहा था कि विधान के मसौदे का स्वरूप संधानीय है। जिस पाठक ने इस सारे विधान को सावधानी से पढ़ा होगा, उसे यह ज्ञात हो जायेगा कि इसका स्वरूप उतना संधानीय नहीं है, जितना कि वह एकात्मक है। यदि मैं प्रतिशत में अपनी धारणा व्यक्त करूं तो मैं यह कहूंगा कि वह 75 प्रतिशत एकात्मक है और 25 प्रतिशत संधानीय है। कई सदस्यों ने शक्तिशाली केन्द्र के पक्ष में जोरदार भाषण दिये है। मेरे विचार से इतना अधिक जोर देने की आवश्यकता नहीं

थी, क्योंकि देश की वर्तमान परिस्थिति में केन्द्र का शक्तिशाली ही होना आवश्यक है। मेरे विचार से आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है। मेरा विचार है कि शक्तिशाली केन्द्र का निश्चित रूप से यही अर्थ नहीं है कि अशक्त प्रान्त हो। इसका प्रयत्न भी किया गया है और मैं इस प्रकार की मनोवृत्ति भी देखता हूं कि केन्द्र पर अत्यधिक भार डाल दिया जाये और अधिक से अधिक केन्द्रीयकरण किया जाये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि डा. अम्बेडकर ने एक प्रकार की चेतावनी दी है। मुझे यह सोच कर प्रसन्नता होती है कि विधान के व्यवहार में आने पर केन्द्र को अधिक से अधिक शक्तिशाली बनाने के प्रयास का फल संघर्ष ही होगा। आखिर यह स्मरण रखना चाहिये कि जंजीर की मज़बूती उसकी सबसे कमज़ोर कड़ी से जानी जा सकती है और इस कारण प्रान्तों को प्रतिद्वन्द्वी सरकारी संगठन न समझना चाहिये। केन्द्र जितना वह हजम नहीं कर सकता, उससे अधिक खाने का प्रयास कर रहा है। मैं अन्तकालीन प्रावधानों में यह देखता हूं कि पहले पांच वर्षों में प्रान्तीय विषयों को भी ले लेने का प्रयास किया गया है। यह सभा ही के निर्णय करने की बात है कि वह इसे किस सीमा तक स्वीकार कर सकती है।

श्रीमान्, जहां तक अल्पसंख्यकों के प्रश्न का सम्बन्ध है, मुझे इसकी प्रसन्नता है कि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के सदस्य अब इस विचारधारा को अपना रहे है कि साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों से क्या प्रकारान्तर से संयुक्त निर्वाचन-क्षेत्रों से भी कोई लाभ नहीं हो सकता। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि बेगम ऐज़ाज़ रसूल ने इनका परित्याग कर दिया है और वे अब पृथक निर्वाचन-क्षेत्रों के पक्ष में नहीं है। मित्र करीमुद्दीन ने भी यही बात कही, परन्तु वे एकल संक्राम्य मत द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व की प्रणाली को चाहते है। मुझे इसका खेद है कि यह प्रकारान्तर से उसी बात को कहना है। यह उचित नहीं है और यह सुझाव कि यह अनुपाती प्रतिनिधित्व द्वारा किया जा सकता है, बिल्कुल ही अव्यावहारिक है; विशेषतया साधारण निर्वाचनों में, जिनका सम्बन्ध उन स्त्री-पुरुषों के वृहत् समुदायों से रहता है, जो निरक्षर है। माननीय सदस्यों को यह समझना चाहिये कि उस प्रणाली के अधीन मतदाता को उम्मीदवारों के नामों के आगे 1, 2, 3 इत्यादि संख्याएं लिखनी होती है। यह कठिन ही नहीं बल्कि अव्यावहारिक भी है। जैसा कि डा. अम्बेडकर ने कहा है, अल्पसंख्यकों को बहुसंख्यकों का विश्वास करना चाहिये। इस सम्बन्ध में एक आधारभूत बात को स्मरण रखना चाहिये। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि श्री त्यागी ने इस पर जोर दिया कि नागरिक अधिकारों को सम्प्रदायों के आधार पर निश्चित नहीं करना चाहिये। हमें इस आधारभूत सिद्धान्त को स्मरण रखना चाहिये।

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

एक असाम्प्रदायिक राज्य में प्रतिनिधित्व का अधिकार केवल किसी क्षेत्र विशेष के प्रतिनिधित्व का अधिकार है, जिसमें कि सभी प्रकार के सम्प्रदायों के लोग रहते हैं और यदि कोई व्यक्ति किसी विधायिनी सभा में प्रतिनिधित्व करता हैं, तो उसे अपने क्षेत्र में रहने वाले सभी लोगों, सभी सम्प्रदायों और सभी वर्गों के स्त्री-पुरुषों की ओर से बोलने का अधिकार हैं। हमें इसी दृष्टिकोण से कार्य करना चाहिये। इस अवसर पर मैं उन कतिपय अल्पसंख्यक सम्प्रदायों की प्रशंसा करता हूं, जिनका हमेशा राष्ट्रीय दृष्टिकोण रहा हैं और जिन्होंने जन्म या सम्प्रदाय के आधार पर कभी भी विशेष प्रावधानों को रखने की मांग नहीं की। मैं उस सम्प्रदाय की ओर संकेत कर रहा हूं जिसके कि श्रीमान् उपाध्यक्ष महोदय आप सदस्य है। मुझे अपने ईसाई मित्रों के निकट सम्पर्क का अवसर मिला और मैंने यह देखा कि उन्होंने कभी भी विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों अथवा विशेष प्रावधानों की मांग नहीं की। मुझे इसकी प्रसन्नता हैं। यदि किसी अल्पसंख्यक सम्प्रदाय के कुछ सदस्य इस समय जगहों की सुरक्षा नहीं चाहते है, तो इसके लिये मैं उनकी प्रशंसा नहीं करता, क्योंकि वे परिस्थितिवश जो कुछ हो सकता हैं वह कर रहे हैं। परन्तु महान् ईसाई सम्प्रदाय ने कभी भी विशेष सुविधा की मांग नहीं की। उनकी बराबर यही धारणा रही हैं कि पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रों से कोई लाभ नहीं हो सकता, क्योंकि आखिर सभी को साथ रहना हैं। मुझे इसकी भी प्रसन्नता हैं कि पारसी सम्प्रदाय ने भी विशेष सुविधाओं की मांग नहीं की।

श्रीमान्, एक माननीय सदस्य सेवाओं में जगहों की सुरक्षा चाहते थे। मेरे विचार से यद्यपि यह शुद्ध राष्ट्रीयता के अनुरूप नहीं है, परन्तु कुछ समय तक हमें इनके लिये सेवाओं में भी जगहें सुरक्षित रखनी चाहियें। परन्तु एक बात को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहियें। इन सभी शांति और समझौते के उपायों के लिये एक काल-सीमा निश्चित कर देनी चाहियें और आपको यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि एक निश्चित काल के उपरान्त इन सभी विशेष प्रावधानों का लोप हो जायेगा। विशेषतया मैं श्रीमती रेणुका राय के इस सुझाव का समर्थन करता हूं कि अनुच्छेद 306 के अन्तिम भाग में से वे शब्द निकाल दिये जिनका आशय यह है कि दस वर्ष के उपरान्त भी इसे चालू रखा जाये। हमें जोरदार और निश्चित शब्दों में अपने इस विचार को व्यक्त कर देना चाहिये कि हम साम्प्रदायिक आधार पर जगहों की सुरक्षा को इसलिये सहन कर रहे हैं कि इस दोष को इस समय स्वीकार करता आवश्यक है।

मैं भाषा के प्रश्न के बारे में भी कुछ कहना चाहता हूं। राष्ट्र भाषा की यथोचित परिभाषा न होने के कारण ही बहुत सी कठिनाइयां उपस्थित हो जाती है। निस्संदेह भारत के लिये एक राष्ट्र-भाषा का होना आवश्यक हैं, परन्तु साथ ही आपको यह भी स्मरण रखना चाहियें कि इस समय भारत में एक ही भाषा नहीं है। मुझे इसकी प्रसन्नता है कि विधान का मसौदा बनाने वाले इस प्रकार के किसी विवाद में नहीं पड़े हैं। उन्होंने अनुच्छेद 99 में केवल यह कहा है कि ''पार्लियामेंट का कार्य अंग्रेजी अथवा हिन्दी में होगा,'' बस इतना ही उन्होंने कहा है। मेरे विचार से, जैसा कि प्रधान मंत्री महोदय ने कहा है कि राष्ट्रभाषा को निश्चित करने के प्रश्न को इसी स्थान पर और इसी समय छेड़ने की आवश्यकता नहीं है। यदि हमें निश्चय ही करना है, तो हमें केन्द्रीय सरकार के लिये एक भाषा निश्चित कर देनी चाहिये और साथ ही इसे बिल्कुल स्पष्ट कर देना चाहिये कि प्रान्तों में प्रान्तीय भाषायें और विभिन्न प्रदेशों में उनकी प्रादेशिक भाषाऐं ही सरकारी भाषाऐं समझी जायेंगी। यदि इसे बिल्कुल स्पष्ट कर दिया जाये, तो इस समय जो उत्तेजना और विवाद उपस्थित है, उसका अन्त हो जायेगा। इसे निश्चित रूप से समझ लेना चाहिये कि प्रादेशिक भाषाऐं प्रान्तों की विधान-मण्डलों तथा उच्च न्यायालयों दोनों में प्रयुक्त होंगी।

श्रीमान्, यदि आप मुझे दो मिनट दें तो केवल एक बात और कहूंगा। वह प्रौढ़ मताधिकार के आधार पर निर्वाचन के संबंध में है। मद्रास के श्री टी.आर. वेंकटराम शास्त्री जैसे वैधानिक विशेषज्ञों को प्रौढ़ मताधिकार की उपयोगिता के सम्बन्ध में सन्देह है, परन्तु इस सम्बन्ध में अब हमने निश्चय कर लिया है और अब हम पीछे नहीं हट सकते। परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण बात, जिस पर मैं जोर देना चाहता हूं, यह है कि निर्वाचित प्रतिनिधियों को लोकमत को सच्चाई के साथ प्रकट करना चाहियें। माननीय सदस्य इससे परिचित है कि दुर्भाग्य से निर्वाचनों का संचालन किस प्रकार होता है। आज हमें पत्रों से ज्ञात हुआ कि इस विधान-परिषद् के एक माननीय सदस्य एक निर्वाचन में मतदान देने के लिये गये। उनसे यह कहा गया कि आपका मतदान हो चुका हैं। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यह सभी जगह एक बड़े पैमाने में हो रहा हैं। सन् 1937 ई. में मैं स्वयं चुनाव के लिये खड़ा हुआ और दो तीन चुनावों में मेरी दिलचस्पी रही। मैं यह जानता हूं कि दो बार ऐसा हुआ कि मतदाताओं की वास्तविक संख्या की कम से कम दुगुनी संख्या में मतदान अनुचित ढंग से हुआ। कुछ ऐसा प्रबंध किया जाना चाहियें, जिससे निर्वाचनों में इस प्रकार का दुराचार न हो सके। मेरा एक

[श्री एल. कृष्णास्वामी भारती]

सुझाव है और मैं उसे इस सभा के विचारार्थ उपस्थित करूंगा और इसके आगे न बढूंगा। प्रत्येक व्यक्ति को एक अभिज्ञा-पत्र देना चाहिये। ब्यौरे के लिये अभिज्ञा-पत्र में व्यक्ति सूचक चिह्न होना चाहियें। मैं तो यह चाहता हूं कि अभिज्ञा-पत्र के साथ मतदाता का चित्र संलग्न होना चाहिये। डाकघर में एक रुपया देकर हमको अभिज्ञा-पत्र मिलता है। उसके साथ हमारा चित्र लगा दिया जाता है और जहां कहीं हम जाये, उसे ले जा सकते है। यदि इस प्रकार की या इसी के समान प्रणाली को स्वीकार किया गया, तो मतदाता को पहले अपना अभिज्ञा-पत्र उपस्थित करता होगा और उसके उपस्थित करने पर उसे मत-पत्र मिलेगा और तब वह मतदान कर सकेगा। मैं इस सम्बन्ध में ब्यौरा दे सकता हूं। यह प्रबन्ध बहुत ही सुविधाजनक सिद्ध होगा। यदि इस सुझाव को स्वीकार किया गया और ठीक स्थान में समाविष्ट किया गया, तो मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि निर्वाचित सदस्य लोकमत का सच्चा प्रतिनिधित्व करेंगे।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी** (मध्यप्रान्त और बरार: राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे पर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ है और मैं उसकी आलोचनाओं को बड़ी सावधानी से सुनता रहा हूं। दो प्रकार की आलोचनायें हुई हैं। कुछ आलोचकों ने वास्तव में अपनी आलोचना की है न कि विधान के मसौदे की। उन्होंने कुछ निर्णय किये और मसौदा-समिति ने उन सभी निर्णयों का मसौदे में समावेश किया और जहां कहीं उसने अपने सुझाव किये हैं, उनके नीचे लकीर खींच दी गई हैं और इस प्रकार इन सुझावों और परिवर्तनों की ओर सभा का ध्यान आकर्षित करने का पर्याप्त प्रयास किया गया हैं। परन्तु आलोचकों ने आलोचनायें की हैं और इस प्रकार परोक्ष रूप से अपने ही निर्णयों की आलोचना की है। दूसरे प्रकार की आलोचना इस तरह हुई है कि आलोचक विचाराधीन विषय के परे चले गये हैं और उन्होंने ऐसी बातें उपस्थित की है, जिन पर किसी देश के विधान के सम्बन्ध में विचार-विमर्श करना अनावश्यक है। मैं इस समय विधान की विस्तृत व्याख्या न करूंगा और यह न बताऊंगा कि उसका प्रकार क्या है और उसके आर्थिक तथा अन्य प्रावधान किस प्रकार के हैं। इन विषयों पर बहुत कुछ कहा जा चुका हैं। मैंने प्रयत्न इसका किया कि मैं देखूं कि विधान के मसौदे में छत्तीसगढ़ रियासतों का क्या स्थान है। मैंने अनुसूची को देखा कि जिसमें शासन-प्रबन्ध की इकाइयों की गणना की गई है, परन्तु उनका कहीं उल्लेख न पाया। वास्तव में इन रियासतों के शासन-प्रबन्ध का मध्यप्रान्त के शासन-प्रबन्ध में समावेश हो गया है और इन

रियासतों की शासन-प्रबन्ध की इकाइयां, जिले बना दिये गये है। मेरी समझ में नहीं आता कि विधान के मसौदे में इन रियासतों को मध्यप्रान्त का एक अंग क्यों नहीं समझा गया है। मैं यह प्रार्थना करता हूं कि यह परिवर्तन कर दिया जाये। परन्तु इससे मेरा यह आशय नहीं है कि इन रियासतों को समाविष्ट करने से लोगों को कोई विशेष लाभ का अनुभव हुआ है। रियासतों की समाविष्टि की अन्तर्कालीन अवस्था में लोगों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करता पड़ा हैं। उन्होंने वास्तव में नुकसान उठाया है। उनकी स्थिति पहले से कुछ बिगड़ गई है, परन्तु मुझे विश्वास हैं और सच्चाई के साथ मेरा यह विश्वास हैं कि ये केवल अन्तर्कालीन अवस्थायें हैं और इनका अन्त हो जायेगा और आगे चलकर इन छोटी-छोटी रियासतों को मध्यप्रान्त में समाविष्ट हो जाने से लाभ ही होगा। वे किसी प्रकार भी अपना संघ बनाने में समर्थ नहीं हैं और न उनके पास अपनी समुन्नति के लिये पर्याप्त आर्थिक तथा अन्य प्रकार के साधन हैं। इसलिये किसी भी दशा में उनका पृथक्करण न होना चाहियें।

इसके अतिरिक्त मैं इस सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि अन्न की प्राप्ति और वितरण के सम्बन्ध में कृषि की उन्नति के एकीकरण और योजनाकरण के विषय का संघ-सूची में केन्द्रीय विषय के रूप में समावेश करता आवश्यक है। ऐसा कहते हुये मैं इस सभा का ध्यान माननीय कृषि मंत्री के उस उत्तर की ओर भी आकर्षित करना चाहता हूं, जो उन्होंने विधान-मण्डल के रूप में समवेत इस सभा में पूछे हुये प्रश्नों के उत्तर में दिया था। उन्होंने कहा था कि समुचित व्यवस्था अथवा शक्ति न होने के कारण केन्द्र के लिये यह सम्भव नहीं हैं कि वह देश की कृषि की उन्नति के प्रश्न को प्रभावपूर्ण ढंग से हल करे। जब हम भारत की व्यवस्था के पुनर्निर्माण की बात सोच रहे हैं, तो हमारे ध्यान में सबसे पहले, भारत की कृषि की व्यवस्था आनी चाहिये। यदि आप भारत में सुव्यवस्थित समुन्नति चाहते है, जिसमें कृषि की सुव्यवस्था भी सम्मिलित है, तो यह आवश्यक हैं कि कृषि की उन्नति तथा उसके योजनाकरण को संघ-सूची में स्थान मिलना चाहियें न कि प्रान्तीय सूची में। भारत में अन्न का प्रश्न बहुत गम्भीर है। विदेशों से अन्न के आयात ही में हमारे लगभग सभी डालर तथा अन्य विनिमय के साधन समाप्त हो जाते हैं और बहुत कुछ इसी कारण हमारी औद्योगिक उन्नति नहीं हो सकी है और न भविष्य में हो सकेगी। इसलिये अन्न के सम्बन्ध में देश को कृषि की उन्नति द्वारा स्वावलम्बी बनाने के लिये वह आवश्यक है कि सारे देश में कृषि का योजनाकरण किया जाये। इसलिये मैं मसौदा-समिति से यह प्रार्थना करना हूं कि वह मेरे इस सुझाव पर

[श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी]

विचार करे और कृषि की उन्नति के एकीकरण को केन्द्रीय विषयों के अधीन रखे। मुझे इसका विश्वास है कि कृषि-विभाग ने भी मसौदा-समिति का ध्यान इस ओर दिलाया है।

अब मैं कामनवेल्थ से भारत के सम्बन्धों के प्रश्न को उठाता हूं। यद्यपि समाचारपत्रों में और सदस्यों के भाषणों में इस प्रश्न की ओर संकेत किया गया हैं, परन्तु इसके सम्बन्ध में अभी कोई निश्चय नहीं किया गया है। जहां तक मेरा मत हैं, मैं तो यह चाहता हूं कि भारत को अपने को स्वतंत्र सर्वसत्ताधारी गणतंत्र घोषित कर देना चाहियें। विधान के किसी भाग में हमें कामनवेल्थ के साथ अपने सम्बन्ध का उल्लेख न करता चाहिये। अपने को एक स्वतंत्र राष्ट्र घोषित करने के उपरान्त ही भारत को किसी राष्ट्रसमूह के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा करनी चाहियें, परन्तु इस समय उपनिवेश की स्थिति में कामनवेल्थ से सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ यही होगा कि हमारा देश अब भी कामनवेल्थ और इंग्लैंड के सम्राट के अधीन हैं।

जहां तक गांवों में निर्वाचनों के प्रश्न का सम्बन्ध है, गांवों के बारे में वास्तव में बहुत कुछ कहा गया हैं। डा. अम्बेडकर के इन शब्दों की कि ''गांव अज्ञान के अड्डे है,'' बड़ी कड़ी आलोचना हुई है। वास्तव में बड़ी कठोर आलोचना हुई है। मुझे यह ज्ञात हैं कि सभा ने सच्ची भावना से प्रेरित होकर ही यह आलोचना की है। सभा की यह इच्छा हैं कि गांवों को आगे बढ़ना चाहियें और राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्य में यथोचित भाग लेना चाहिये। क्योंकि सभा की यह हार्दिक इच्छा है, इसलिये मैं उससे प्रार्थना करता हूं कि विधान में ही निर्वाचन-प्रणाली का ब्यौरा दे दिया जाये। भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रौढ़ मताधिकार प्रदान करने के साथ-साथ विधान-मण्डलों के लिये पात्रता उन्हीं लोगों तक सीमित की जाये, जो न तो आय-कर देते है और न 100 एकड़ से अधिक भूमि के स्वामी है। मुझे विश्वास है कि इस व्यवस्था से बहुत से ग्रामीण विधान-मण्डलों में आ जायेंगे और वे अपना यथोचित योग दे सकेंगे।

अब मैं एक भाषा-भाषी प्रान्तों के प्रश्न को उठाता हूं। इस प्रश्न की परीक्षा करने समय यह कहा गया था कि भाषा ही के आधार पर प्रान्तों का पुनर्निश्चयन आवश्यक है। मेरे विचार से यह ठीक सिद्धान्त नहीं है। आर्थिक साधनों का ही ध्यान रख कर भारत के किसी प्रान्त का निर्माण होना चाहिये, ताकि वह अपने प्रत्येक नागरिक को विकास का पूर्ण अवसर प्रदान कर सके। एक भाषा-भाषी प्रान्तों

के सम्बन्ध में विचार-विमर्श से और भाषा के आधार पर इस प्रश्न पर विचार करने के लिये एक आयोग की नियुक्ति से देश में एक प्रकार की उत्तेजना फैल गई है, जिसका प्रभाव राजनैतिक दलों पर भी पड़ा है। मैंने यह सुना कि कांग्रेस संस्था के अन्दर मनीपुर, त्रिपुरा और कचार का एक जिला अपने लिये एक पृथक् प्रान्त की मांग कर रहे है। अन्य भी कुछ ऐसे छोटे-छोटे संघ हैं जो पृथक् प्रदेशों के रूप में रहना चाहते हैं। यह प्रवृत्ति राष्ट्र के लिये बहुत हानिकारक सिद्ध होगी और इसे रोकना आवश्यक हैं।

भाषा के सम्बन्ध में मैं तो यह चाहता हूं कि हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लेना चाहिये। परन्तु मेरा यह अर्थ नहीं है कि विधान के मसौदे के अनुवाद में जिस हिन्दी का प्रयोग किया गया है, उसे स्वीकार करना चाहिये।

उपाध्यक्ष: माननीय सदस्य ने अपने समय से अधिक समय ले लिया है।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी:** अच्छी बात हैं। श्रीमान्, चूंकि अब मेरे पास समय नहीं है, इसलिये मैं इतना ही कह कर समाप्त करता हूं। डा. अम्बेडकर ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया हैं, उसका मैं समर्थन करना हूं।

श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी (संयुक्तप्रान्तः जनरल): श्रीमान्, आपके सम्मुख अंग्रेजी में बोलते हुये मुझे कुछ संकोच का अनुभव हो रहा हैं। यह प्रतीत होता हैं कि कुछ मित्रों की, विशेषतया दक्षिण भारत के मित्रों को यह भ्रम हो गया हैं कि हम हिन्दी में इस कारण बोलते हैं कि हम उन्हें अपने विचारों से परिचित नहीं कराना चाहते हैं। मैं उन्हें विश्वास दिलाता हूं कि बात यह नहीं है। वास्तव में बात यह हैं और मैं इसे स्पष्टतया कहना चाहता हूं कि हम अपने विचारों को हिन्दी में अंग्रेजी से दस गुना अच्छी तरह व्यक्त कर सकते है। यही कारण हैं कि हम में से कुछ लोग बराबर हिन्दी में बोलते है। परन्तु इन मित्रों की इच्छा को पूरा करने के लिए मैं अंग्रेजी में बोलने जा रहा हूं।

मुख्य विषय पर आते हुये मैं यह कहना चाहता हूं कि मसौदा-समिति के सदस्यों तथा उसके सभापति ने जो परिश्रम किया और जिस कोटि का विधान बनाया, उसके लिये लगभग सभी वक्ताओं ने उन्हें रस्मी तौर पर बधाई दी है। परन्तु मैं इस रस्म को पूरा करने नहीं जा रहा हूं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि

[श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी]

उन्होंने बहुत परिश्रम किया है और इस विधान-परिषद् में हमने जो सिद्धान्त निश्चित किये थे उनके आधार पर हमारे सम्मुख विधान का सम्पूर्ण चित्र रखा हैं। मैं इससे भी परिचित हूं कि विधान के मसौदे में बहुत सी अच्छी बातें है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उन्होंने विभिन्न देशों के विधानों का गम्भीर अध्ययन किया और उनमें से अच्छी बातें ली, तथा उन्हें इस देश को आवश्यकताओं के अनुरूप बनाया। यही इस विधान का मुख्य गुण है। एक शब्द में यह कहा जा सकता हैं कि यह विधान 'रूढ़िगत' है।

परन्तु विधान के मसौदे के गुणों के साथ हमें यह भी देखना है कि इसके दोष क्या हैं और इसमें कौन सी बातें छूट गई हैं। इसके उपरान्त हमें इन दोषों की दूर करने तथा छूटी हुई बातों की स्थान देने का प्रयास करना चाहिये।

इन मुख्य दोषों और छूटी हुई बातों को बताने के पहले मैं विधान के मसौदे के प्रस्तावक महोदय द्वारा व्यक्त किये हुये कुछ विचारों की ओर इस सभा का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मैं अनावश्यक ब्यौरे की चर्चा नहीं करना चाहता क्योंकि इन बातों पर मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता प्रभावपूर्ण ढंग से अपना मत प्रकट कर चुके हैं। परन्तु मैं कुछ विचारों को व्यक्त किये बिना नहीं रह सकता। एक बात मुझे आपत्तिजनक लगी और मैं उसका उत्तर देना चाहता हूं। डा. अम्बेडकर ने यह कहा कि भारत की भूमि जनतंत्र के लिये अनुपयुक्त है। मेरी समझ मैं नहीं आता कि उन्होंने भारत का इतिहास किस प्रकार पढ़ा। मैं स्वयं इतिहास और राजनीति का विद्यार्थी हूं और मैं इसे निश्चित रूप से कह सकता हूं कि यूनान या संसार के किसी देश से पहले भारत में जनतंत्र का बोलबाला था। पश्चिम के सभी देशों ने यूनान से प्रजातंत्र के विचारों को ग्रहण किया और साधारणतया यह समझा जाता हैं कि यूनान में ही सबसे पहले जनतंत्र चलन में था।

परन्तु मैं यह कहता हूं और मैं इसका प्रमाण दे सकता हूं कि यूनान से बहुत पहले भारत में जनतंत्र का साम्राज्य था। मैं इस समय इस सम्बन्ध में ब्यौरा नहीं दूंगा, परन्तु मैं दो तीन बातों की ओर प्रस्तावक महोदय का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं। मुझे यह ज्ञात है कि उन्होंने इतिहास पढ़ा है और वे संस्कृत के भी विद्वान हैं और इसलिये उन्हें स्मरण होगा कि बुद्ध के समय में भी भारत में जनतंत्र का चलन था। मैं यहां तक ऐसे वाक्य को दुहराना चाहता हूं जिस कि प्राय: उद्धृत किया जाता हैं। कुछ व्यापारी उत्तर भारत से दक्षिण की ओर गये।

दक्षिण भारत के राजा ने पूछा कि उत्तर भारत का राजा कौन है? उन्होंने उत्तर दिया-'देव' 'केचिद्देशा: गणधीना: के चिद् राजाधीना:'। इसका अर्थ यह है कि उत्तर में कुछ देशों में गणतंत्र है और कुछ में राजतंत्र है।

सिकन्दर के काल में हम यह देखते हैं कि सिकन्दर के इतिहास-लेखकों ने उत्तर भारत के नगर-राज्यों की बहुत प्रशंसा की है, जिनका शासन, जनतंत्र के आधार पर गणतंत्र के रूप में होता था। इसमें सन्देह नहीं कि आगे चलकर बाहर से आक्रमणों के कारण राजनैतिक उन्नति अवरुद्ध हो गई। परन्तु फिर भी हम यह देखते हैं कि हमारे गांवों के ग्राम-पंचायतों के नाम से इसी प्रकार की जनतंत्रात्मक व्यवस्था रही। प्रस्तावक महोदय ने अपने भाषण में इसे स्वीकार किया हैं। यह बड़े दुर्भाग्य की बात हैं कि उन्होंने ऐसी बातें कही हैं, जिनकी पुष्टि इतिहास से नहीं हो सकती।

जहां तक विधान के मसौदे के दोषों का सम्बन्ध है, मैं आप का ध्यान लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव की ओर आकर्षित करना हूं। उसमें भी परिवर्तन करने का प्रयास किया गया हैं। 'इंडिपेण्डेण्ट (स्वतंत्र)' शब्द की जगह 'डिमोक्रेटिक (जनतंत्रात्मक)' और 'रिपब्लिक (गणतंत्र)' शब्द की जगह, 'स्टेट (राज्य)' शब्द रखा गया हैं। मेरे विचार से मसौदा-समिति को ऐसा न करना चाहिये था। इस प्रकार के परिवर्तन का सुझाव ही हमारे लिये अरुचिकर हैं और मुझे आशा हैं कि यह सभा उसे स्वीकार नहीं करेगी।

मूलाधिकारों के सम्बन्ध में हम यह देखते हैं कि भाषण-स्वातंत्र्य और सम्मेलन स्वातंत्र्य आदि का अधिकार एक हाथ से दिये गये है, तो दूसरे हाथ से छीन लिये गये हैं। अनुच्छेद 13 के प्रथम खण्ड में जो अधिकार दिये गये है, उनको बाद में आने वाले खण्डों में छीन लिया गया है। राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों में भी यही किया गया है। आपको स्मरण होगा कि मैंने आपके सम्मुख इस आशय का एक संशोधन रखा था कि 'रिपब्लिक (गणतंत्र)' शब्द के पहले 'सोशियलिस्ट (समाजवादी)' शब्द जोड़ दिया जाये। मुझे इसका खेद है कि उस समय सेठ दामोदरस्वरूप ने मेरा समर्थन करना उचित नहीं समझा। परन्तु मुझे इसकी प्रसन्नता है कि अब वे समाजवाद का समर्थन करने के लिये यहां आये हैं। मुझे खेद हैं कि उस समय किसी ने मेरे प्रस्ताव का समर्थन नहीं किया और वह अस्वीकार हो गया। चाहे समाजवादी शब्द प्रयुक्त हो या न हो, हमें इसका ध्यान रखना चाहिये कि यदि हम विधान में राजनैतिक जनतंत्र को स्थान दे, तो आर्थिक जनतंत्र को भी स्थान दें।

[श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी]

जहां तक विधान के मसौदे में दिये हुए राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों का सम्बन्ध हैं, मैं यह कहूंगा कि यह सोचने के लिये कोई कारण नहीं है कि इनका भारत के भविष्य के सामाजिक ढांचे पर कोई प्रभाव पड़ेगा।

इसमें कुछ अन्य दोष भी है परन्तु मैं इनकी ओर संशोधनों पर विचार विमर्श होते समय संकेत करूंगा।

किन्तु मुझे अवश्य ही उन मुख्य बातों की चर्चा करनी चाहिये, जिन्हें कि विधान के मसौदे में छोड़ दिया गया है। तीन ऐसी बातें है जो बहुत ही गम्भीर और महत्त्वपूर्ण हैं, अर्थात् राष्ट्रीय पताका, राष्ट्रीय गान और राष्ट्रीय भाषा को छोड़ दिया गया हैं। मेरे विचार से इनको छोड़ देना एक बहुत गम्भीर बात है। मसौदा-समिति को इन तीनों विषयों को विधान में समाविष्ट कर देना चाहिये था। पताका के सम्बन्ध में तो कोई विवाद हैं नहीं। इसे तो आसानी से समाविष्ट किया जा सकता था।

राष्ट्र-गान के सम्बन्ध में ऐसा कुछ विवाद हैं कि 'वन्देमातरम्' को चुना जाये या 'जन-गण-मन' को। मेरे विचार से 'वन्देमातरम्' जो पिछले 50 वर्षों से हमारा गान रहा है, तथा हमारे स्वतंत्रता संग्राम का प्रकाश-स्तम्भ रहा है हमारे देश के राष्ट्रगान के स्थान को प्राप्त करेगा।

राष्ट्रभाषा का भी प्रश्न हैं।

***उपाध्यक्ष:** यदि आप बोलते जायेंगे तो मेरे पास अन्य वक्ताओं के लिये बहुत कम समय रह जायेगा।

श्री विश्वम्भर दयालु त्रिपाठी: श्रीमान्, राष्ट्रभाषा की ओर संकेत करके मैं अपना भाषण समाप्त कर दूंगा।

हमारा देश बहुत विशाल है और इसलिये अभी तक यह सम्भव नहीं हो सका हैं कि सारे भारत के लिये एक ही भाषा हो। परन्तु एक स्वतंत्र देश के निवासी होते के नाते अब हमें किसी ऐसी भाषा को विकसित करता है, जो भारत की

राष्ट्र-भाषा का रूप धारण कर सके। इस सम्बन्ध में मेरे यह सुझाव हैं। पहली बात यह हैं कि प्रत्येक प्रान्त में सरकार का तथा लोगों का कार्य लोगों की भाषा या भाषाओं में होना चाहिये। दूसरी बात यह हैं कि यद्यपि अंग्रेजी भाषा हम पर विदेशियों द्वारा लादी गई हैं। उसे कुछ समय तक अन्तर्प्रान्तीय व्यवहार के लिये रहने देना चाहिये। तीसरी बात यह है कि हमें देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी की अपनी राष्ट्र-भाषा स्वीकार करना चाहिये। (*हर्ष ध्वनि*) हमें इसी विधान पर और इसी समय निश्चित रूप से निर्णय कर लेना चाहिये कि देवनागरी लिपि में लिखी हुई हिन्दी हमारे देश की राष्ट्र-भाषा होगी, यद्यपि जब तक हम उत्तरी भारत और दक्षिणी भारत में हिन्दी का पर्याप्त रूप से विकास नहीं कर लेते हैं, तब तक अंग्रेजी एक दूसरी भाषा के रूप में रहे। राष्ट्र-भाषा के सम्बन्ध में मुझे इतना ही कहना हैं।

अन्तिम बात जो मुझे आप से कहनी है, वह यह है कि हमें सांस्कृतिक तथा आर्थिक दृष्टि से इसकी व्यवस्था करनी है कि गऊ की रक्षा हो। हमारे कांग्रेस दल ने यह निश्चय कर लिया था कि गौ-रक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये। सम्भवत: मसौदा-समिति इससे परिचित नहीं थी। इसी कारण विधान के मसौदे में इस सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं रखा गया हैं। मुझे आशा है कि यह विधान-परिषद् इस आशय के प्रावधान को हमारे विधान में समाविष्ट करेगी।

मुझे इतने ही शब्द कहने हैं। मैं आशा करता हूं कि इन विषयों के सम्बन्ध में जिस समय संशोधन आयेंगे, उस समय यह सभा उन पर विचार करेगी और मसौदे के जिन दोषों की ओर मैंने संकेत किया हैं, उन्हें दूर करने तथा छूटी हुई बातों की स्थान देने का प्रयास करेगी। जय हिन्द।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं संधानीय शासन-प्रणाली के विरुद्ध हूं, क्योंकि मुझे इसका भय हैं कि अर्थ-सत्ताधारी राज्यों के निर्माण से विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्तियों का उदय होगा, जिससे कि भारत की एकता छिन्न-भिन्न हो जायेगी। प्रान्तीय स्वायत्त शासन के कारण देश का विभाजन हो गया। संधानीय शासन-प्रणाली से इस उपनिवेश में असंख्य पाकिस्तानों की स्थापना हो जायेगी।

हमारे केन्द्र के मंत्री पिछले पन्द्रह महीनों से शासनारूढ़ रहे हैं। उन्हें यह ज्ञात हैं कि यदि वे सुधार की किसी योजना की कार्यान्वित करना चाहते हैं, तो उसके लिये प्रान्तीय मंत्रियों की स्वीकृति प्राप्त करना कितना कठिन है। उनकी स्वीकृति

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

प्राप्त करने में बहुत समय नष्ट हो जाता है और बहुत कम अवसरों पर वह स्वीकृति प्राप्त होती है।

प्रान्तीय सरकारों के कारण साधारण मनुष्य को किसी प्रकार का भी लाभ नहीं होता। उनको यदि समाप्त कर दिया जाये, तो उसका कोई अहित न होगा। इसके विपरीत मुझे विश्वास है कि उसकी दशा बहुत सुधर जायेगी। निस्सन्देह पेशेवर राजनीतिज्ञों को अपनी आजीविका से वंचित होना पड़ेगा। प्रांतों में एक साधारण मनुष्य को ही अपने यहां के खर्चीले शासन-प्रबन्ध का भार वहन करना पड़ता है। गवर्नर, मंत्रियों, पार्लियामेंटरी सेक्रेटरियों और विधान-मण्डलों के सदस्यों के वेतन में ही सारे आगम की आय व्यय हो जाती है। राज्य को प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये गरीब लोगों का ही शोषण होता है।

संधानीय शासन-प्रणाली राजनीति में एक प्रतिगामी शक्ति है। वह जनतंत्रीय आर्थिक आन्दोलनों के उत्थान तथा उन्नति को अवरुद्ध कर देती है। इसके कारण प्रान्तों के बीच आर्थिक असमानता चिरस्थायी हो जाती है, जिसके फलस्वरूप उनकी आपस की प्रतिस्पर्धा तथा कटुता और भी बढ़ जाती है और एक भाषा प्रान्तों को मांग होने लगती है।

समूहवादी युग की आवश्यकताओं के लिये संधानीय शासन-प्रणाली बिल्कुल अनुपयुक्त है। राष्ट्रोन्नति की वृहत् योजनाओं को तुरन्त ही कार्यान्वित करना होता है। यदि केन्द्रीय शासन के मार्ग में, जिसे कि निरक्षरता, दरिद्रता, साम्प्रदायिकता तथा प्रान्तीयता के चतुर्मुखी प्रश्न को हल करना है, ये अर्धसत्ताधारी राज्य बाधाएं डालें तो यह भारत के निवासियों के प्रति एक अपराध होगा। जो लोग संधानीयता, प्रादेशिकता, प्रान्तीय स्वायत्त-शासन और एक भाषा-भाषी प्रान्तों को चर्चा करते है, वे यह नहीं जानते है कि वे एक अतीत काल की भाषा बोल रहे है। ये शब्द 19वीं शताब्दी की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त थे, जब कि औद्योगिकता का आरम्भ काल था। राजनैतिक संगठन के ये साधन उन कृषिजीवी सम्प्रदायों की आवश्यकताओं के लिये उपयुक्त है, जो एक वृहत् क्षेत्र में फैले हुये हो। आज चित्र बिल्कुल बदल गया है। आज हम एक ऐसे विश्व-राज्य की कल्पना कर रहे है, जिसे बहुत आबादी वाले क्षेत्रों से लोगों को कम आबादी वाले क्षेत्रों में बसाने की पूरी शक्ति होगी। विश्व-राज्य को मनुष्यों की सारी आर्थिक सम्पत्ति का नियमन

करने का अधिकार होगा। राष्ट्रवादी राज्यों का आजकल की व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है और उनसे मानव की उन्नति तथा हितसाधन के मार्ग में बाधा ही पड़ती है। इस युग की प्रधान प्रवृत्ति किसी सर्वसत्ताधारी अन्तर्राष्ट्रीय प्राधिकारी के हाथों में सारी शक्ति का संकेन्द्रण करने की है। उपराष्ट्रीय समूहों और संधानीय शासन-प्रणाली की चर्चा करना प्रतिक्रियावादिता का ही लक्षण है। यदि कोई विश्व-युद्ध छिड़ जाये तो न जाने भारत की क्या दशा होगी। यदि भारत को कम से कम दस वर्ष के लिये राष्ट्र-निर्माण का अवसर मिल गया, तो वह अन्य राष्ट्रों प्रान्तीय तथा संधानीय अर्धसत्ताधारी राज्य उसके मार्ग में बाधा न डालें तो वह तीसरे विश्व-युद्ध को चुनौती का उत्तर दे सकता है। भारत संसार की महान् शक्तियों से कई शताब्दी पीछे है। यदि हमें बाह्य और आन्तरिक प्रतिक्रिया की शक्तियों पर विजय पानी है, तो हमें राष्ट्रोन्नति के कुछ स्तरों से शीघ्रातिशीघ्र पार निकल जाना है और शताब्दियों को क्षणों में परिणत कर देना है। संसदात्मक संधानीयता को स्वीकार करने से हम अपने शत्रुओं के हाथों में कठपुतली बन जायेंगे। विभाजित जर्मनी और खण्डित कोरिया का अन्तर्राष्ट्रीय लुटेरों की राजनैतिक योजनाओं में मुख्य स्थान है। जिन लोगों की अपनी योजनायें है, उन्हें विभाजित भारत के कारण भी कुछ सुरक्षा मिल जाती है। हमारे हिस्से में भारत का जो भाग आया है, यदि उसमें हम संधानीय सिद्धांतों का समावेश करें, तो इससे ऐसे राष्ट्रांघ लोगों को पूर्ण प्रश्रय मिलेगा, जिनका लूट-खसोट ही जीवन है। कोई भी विदेशी शक्ति यह नहीं चाहती कि भारत में एक शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार हो। भारत में शक्तिशाली केन्द्रीय सरकार होने से सभी पशोपेश में पड़ जायेंगे। शक्तियों का संधानीय, प्रान्तीय और समवर्त्ती रूप में विभाजन करने का अथे आत्मघात ही है। शक्तियों के इस प्रकार के विभाजन से सभी ओर से राष्ट्र की शक्ति क्षीण हो जायेगी।

श्री एस. नागप्पा (मद्रास : जनरल): क्या कोई माननीय सदस्य लिखा हुआ भाषण पढ़ सकता है?

***उपाध्यक्षः** मैं इसे आपत्तिजनक नहीं समझता। आप आगे बढ़िये।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** जिलों के कलेक्टर और कमिश्नरियों के कमिश्नर के केन्द्रीय गृहविभाग के अधीन कर दिये जाने चाहियें। गवर्नरों, मंत्रियों और प्रान्तीय

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

विधान-मण्डलों के सदस्यों की जगहों को समाप्त कर देना चाहिये। सभी प्रान्तों और राज्यों की सरकारों को समाप्त कर देना चाहियें। विधान-परिषद् को सब अधिशासी, विधायिनी, न्याय-सम्बन्धी तथा अर्थ-सम्बन्धी शक्तियां राष्ट्रपति को दे देनी चाहिये। उनके चार परामर्शदाता होने चाहियें। अर्थात् राजा जो, पण्डित जी, सरदार पटेल और मौलाना आज़ाद। इस प्रकार की शासन-व्यवस्था करने के उपरान्त विधान-परिषद् का अवसान हो जाना चाहियें। इस परिषद् को तभी समवेत होना चाहिये, जब कि एक और अधिकांश परामर्शदाताओं और दूसरी ओर राष्ट्रपति के बीच किसी प्रश्न पर गम्भीर मतभेद हो जाये। यदि राष्ट्रपति अथवा किसी परामर्शदाता की मृत्यु हो जाये, तो उसका उत्तराधिकारी चुनने के लिये विधान-परिषद् बुलाई जाये। तीसरा विश्व-युद्ध किसी समय भी छिड़ सकता है और इसलिये उसके अन्त तक इस प्रकार को शासन-व्यवस्था होती चाहिये। वर्तमान भारत सरकार के एक्ट को समाप्त कर देना चाहिये।

मैंने दार्शनिक राजाओं के शासन का समर्थन किया है और वह इसलिये कि प्लेटो का, जिसे मैं राजनीति-विज्ञान का जन्मदाता समझता हूं, यह मत था कि यही सबसे अच्छी शासन-प्रणाली है। हम बड़े गर्व से अयोध्या के राजा राम और मिथिला के राजा जनक के राज-काल का स्मरण करते है। प्लेटो ने अपनी पुस्तक 'रिपब्लिक' में जिस विचारधारा का प्रतिपादन किया है, वह भारत में हमेशा व्यवहार में रही है। मैंने दार्शनिक राजाओं के शासन का इसलिये समर्थन किया है कि यही सबसे अच्छी शासन-प्रणाली है। मेरा जीवित लोगों में जितना विश्वास है, उतना किसी लिखित विधान के निष्प्राण खण्डों में नहीं है। मेरा किसी चिरस्थायी विधान में विश्वास नहीं है अब एक युग का अन्त हो रहा है। हमारे लिये यह समझता बहुत कठिन है कि आने वाली शताब्दी की आवश्यकताएं क्या होंगी। अमेरिकनों ने पूंजीवाद के युग के आरम्भ काल में अपना विधान निर्माण किया। इस युग के अन्त में हम अपना विधान बनाने जा रहे है। तृतीय विश्व-युद्ध इसका निर्णय करेगा कि आने वाले युग में आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था किस प्रकार की होगी। आज हम अपने को उथल-पुथल तथा विनाश की अवस्था में पाते है। सारे एशिया में उथल-पुथल मची हुई है। राष्ट्र अभी शैशवास्था में है और उसके भरण-पोषण की आवश्यकता है। यह एक नई सामाजिक व्यवस्था के जन्म के पूर्व की प्रसव-पीड़ा का काल है। आज हम चाहे जैसा भी विधान बनायें,

वह आगे चल कर असामयिक प्रतीत होगा। मतदाताओं के हाथ में शक्ति दे देना संकटास्पद ही होगा।

इस्लाम के खलीफों अबू वक्र और शाह उमर की परम्परायें प्रशंसनीय है। जर्मनी, इटली और तुर्की ने हिटलर, मुसोलिनी और कमाल अतातुर्क के नेतृत्व में ऊंची प्रतिष्ठा का स्थान प्राप्त किया। रूस के एकाधिपति ने बड़ी आश्चर्यजनक बातें कर दिखाई है। हमारे इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, गुप्तवंश के सम्राटों और हर्षवर्धन तथा अकबर के राजकाल में भारत में शांति तथा समुन्नति का साम्राज्य रहा, तथा वे सबसे अच्छे राजकाल समझे जाने है।

इस समय सारे एशिया में किसी देश की भी संसदात्मक शासन-प्रणाली चर्चा के योग्य नहीं है। इसके कुछ आधारभूत कारण हैं। भारत में संसदात्मक प्रणाली को बलपूर्वक प्रयुक्त करने से केवल संकट और विनाश ही उपस्थित होंगे।

मैं संसदात्मक शासन-प्रणाली को जनतंत्र का अव्यवहित रूप समझता हूं। जिस शासन-प्रणाली को हिटलर, मुसोलिनी, कमाल अतातुर्क और स्टालिन ने स्थापित किया था, वह जनतंत्र का व्यवहित रूप है। जर्मनी, इटली और तुर्की के सभी लोग अपने एकाधिपतियों के अनुगामी रहे। हमारे लिये पंडित नेहरू जितनी प्रतिष्ठा के पात्र है, सम्भवतः उतनी ही अथवा उससे अधिक प्रतिष्ठा के पात्र रूस के लोगों के लिये स्टालिन है। हम रूस के शासन को अजनतंत्रीय कैसे कह सकते है? हम इसी निर्णय पर पहुंचते है कि सभी शासन-व्यवस्थाओं का आधार, चाहे वे संसदात्मक हो अथवा एकसत्तात्मक हो, जनतंत्र ही है।

जनतंत्र को आत्मा निर्वाचनाधिकार नहीं है। लोगों की प्रत्यक्ष भावना नहीं, बल्कि वास्तविक भावना का प्रतिनिधित्व ही जनतंत्र की आत्मा है। एक ही आदमी, यदि वह लोगों की वास्तविक भावना का समर्थन करना है, तो चाहे लोग उसे निर्वाचित करें या न करें, वह सभी लोगों का प्रतिनिधित्व करने में समर्थ है। यदि कोई एकाधिपति अधिक से अधिक लोगों के अधिक से अधिक हित की चिन्ता करना है, तो उसका शासन सच्चे अर्थ में जनतंत्रीय है। रूप से अधिक महत्त्व गुण को होता है।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

एक-दल शासन जनतंत्र के आदर्शों के बिल्कुल अनुरूप है; इस बात को समझता चाहिये। वर्गहीन समाज में ही वास्तविक जनतंत्र पनप सकता है। युद्ध के कारण जब राष्ट्रीय राज्यों तथा पूंजीवाद का विनाश हो जाना है, तभी वास्तविक जनतंत्र का उदय होता है। मेरे मित्र यह कह सकते है कि एक दल शासन से फ़ासिज्म की उत्पत्ति होगी। इसके उत्तर में मैं यह कहना चाहता हूं कि यदि लोग अपने राजनैतिक दायित्वों को अच्छी प्रकार न समझे, तो जैसा कि जर्मनी और इटली में हुआ था, संसदात्मक शासन-प्रणालियां ही फ़ासिज्म के उत्थान में सहायक हो सकती है। क्या भारत के लोग अपने राजनैतिक दायित्वों को समझते है? भारत के अधिकांश लोग निरक्षरता, दरिद्रता, साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता के घोर अंधकार में पड़े हुए है। केवल दार्शनिक सम्राट ही इस प्रश्नों को हल कर सकता है। संसदात्मक तथा संधानीय दोनों शासन-प्रणालियों से रोग बढ़ता ही जायेगा।

आलोचक यह कह सकते है कि शक्ति से दुराचार होता है और अत्यन्त शक्ति से अत्यन्त दुराचार होता है। मेरा इस कथन में विश्वास नहीं है। क्या हिटलर दुराचारी था? क्या स्टालिन दुराचारी है? मुस्तफा कमाल और मुसोलिनी का जीवनवृत्त उतना ही अच्छा है जितना कि संसदात्मक जनतंत्र के नेताओं का।

इस अणु-युग में आधुनिक राज्य के प्रश्न इतने जटिल और भ्रामक हो गये है कि अब ऐसे लोगों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है जो यह समझते है कि शासन का संचालन विशेषज्ञों द्वारा ही हो सकता है। संसदात्मक जनतंत्र की उपयोगिता अब समाप्त हो गई है।

यदि हम एशिया में एंग्लो-अमेरिकन चुनौती का जवाब देना चाहते है, यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार और वाणिज्य को आवश्यकताओं को पूरा करना चाहते है; यदि हम तीसरे विश्व-युद्ध के आसन्न संकट का सामना करना चाहते है और यदि हम अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के आघातों का उत्तर देना चाहते है, तो हमें सारी शक्ति अपने नेताओं को समर्पित कर देनी चाहिये।

हमारे विदेशी मित्रों के लिये यह सम्भव नहीं है कि वे स्पेन अथवा सोवियत रूस के मामलों में हस्तक्षेप करें, क्योंकि उनकी सीमाओं पर लोहे का पर्दा पड़ा हुआ है। संसदात्मक जनतंत्र से विदेशियों को किसी देश के आन्तरिक मामलों में

हस्तक्षेप करने की सुविधा मिल जाती है। यदि हमें अपने विदेशी मित्रों के कुचक्रों से बचना है, तो हमें उन्हें किसी प्रकार की सुविधा न देनी चाहिये। हमारा विधान हर तरह से एक पक्का विधान होना चाहिये। संसदात्मक जनतंत्र का परित्याग कर दिया जाना चाहिये।

डा. अम्बेडकर ने कहा था कि हमारा विधान संधानीय भी है और एकात्मक भी। शांतिकाल में तो उसका स्वरूप संधानीय रहता है, परन्तु युद्धकाल में उसे एकात्मक रूप दिया जा सकता है। शांतिकाल और युद्धकाल का विभेद केवल काल्पनिक है, क्योंकि वस्तुतः इस समय हम एक असैन्य युद्ध में संलग्न है। यदि हम विदेशी शक्तियों के आघातों का सामना करना चाहते है, तो जिस प्रकार के जनतंत्र का हम इस समय निर्माण कर रहे है, उससे हमारे मार्ग में बाधा ही पड़ेगी। शांतिकाल की आवश्यकतायें उतनी ही महत्त्वपूर्ण होती है और उन्हें तत्काल ही उसी प्रकार पूरा करना होना है, जैसे कि युद्ध-काल की आवश्यकताओं को। यदि हम इस समय एकात्मक विधान को स्वीकार करने है, तो हम तीसरे विश्व-युद्ध से अपनी रक्षा करने के लिये जो बातें आवश्यक होंगी, उन्हें पूरा कर सकेंगे। मैं नहीं जानता कि पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल से भी अधिक योग्य नेता हमारे बीच में है या नहीं। फिर हम सभी प्रकार की आलोचनाएं करके भारत सरकार का समय क्यों नष्ट करते है? हमें सुव्यवस्था स्थापित करनी है। यदि हम युद्ध की चुनौती का जवाब न दे सके, तो इतिहास में हमारे राष्ट्र का एक विनष्ट राष्ट्र के नाम से ही उल्लेख होगा। मैं निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि यदि युद्ध छिड़ा, तो इस देश की क्या दशा होगी और इसे किन परिणामों को भोगना पड़ेगा। सारे एशिया में उथल-पुथल मची हुई है। हमें चाहिये कि हम अपने नेताओं की शक्ति को क्षीण न करें वही सबसे अच्छे लोग है और वही इस देश का शासन कर सकते है। क्या उन पर नियंत्रण रखने के लिये यह आवश्यक है कि हम विधान-मण्डल में बैठे रहें और सभी प्रकार की बकवास करते रहे?

इसके उपरान्त सभा तीन बजे तक दोपहर के भोजन
के लिये स्थगित हो गई।

सभा दोपहर के भोजन के उपरान्त तीन बजे पुनः समवेत हुई।
उपाध्यक्ष महोदय, डा. एच.सी. मुकर्जी अध्यक्ष पद पर आसीन थे।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान्, प्रस्ताव पर आगे विचार करने से पहले क्या मैं आपसे इस सम्बन्ध में इस बात के निर्णय के लिये प्रार्थना कर सकता हूं कि क्या इस सभा के माननीय सदस्यों के भाषणों को ''बकवास'' कहना संसदात्मक पद्धति के अनुरूप है?

***उपाध्यक्ष:** मैं उसे पद्धति के अनुरूप नहीं समझता हूं।

***श्री एच.वी. कामत:** यह प्रश्न श्री ब्रजेश्वर प्रसाद के भाषण के सम्बन्ध में उठता है। उन्होंने इस सभा के माननीय सदस्यों के भाषणों का वर्णन करते हुये 'बकवास' शब्द कहा। इसलिये मैंने इस प्रश्न को उठाया है।

***उपाध्यक्ष:** क्या वे यहां उपस्थित है?

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद:** मुझे ज्ञात नहीं है कि यह शब्द असंसदात्मक है। यदि यह ऐसा है, तो श्रीमान्, मैं इसे वापस लेता हूं और माननीय सदस्य महोदय जिस शब्द का भी सुझाव करें, उसे मैं उसकी जगह रखने के लिये तैयार हूं।

***उपाध्यक्ष:** अब हम डा. अम्बेडकर के प्रस्ताव पर आगे विचार करेंगे।

श्री एम. सत्यनारायण (मद्रास : जनरल): यह आप लोगों को सुनकर अचम्भा होगा कि मद्रास की तरफ से कोई हिन्दुस्तानी बोलने वाले यहां आये है। अब तक तो यह समझा जाता था कि मद्रास के जितने मेम्बरान है, वह अंग्रेजी में बोलना चाहेंगे। यह अचम्भा मुझको नहीं है। कारण यह है कि मैं इस बात में पूरी तरह विश्वास रखता हूं कि इस असेम्बली में जितने भी व्याख्यान हों, वे हिन्दुस्तानी में ही हों। लेकिन बड़े दुर्भाग्य और बड़ी मुश्किल की बात है कि 30 साल से काम करने हुये भी दक्षिण से, पूर्व से और पश्चिम से पूरी तरह से हिन्दुस्तानी बोलने वाले इसमें नहीं आ पाये। इसका मतलब यह नहीं है कि इन प्रान्तों में हिन्दुस्तानी बोलने वाले नहीं है, लेकिन हिन्दुस्तानी बोलने वाले इस सभा में आ नहीं पाये है। यहां पर उत्तर से भी जितने लोग आये है, वे भी मैं देखता हूं कि अंग्रेजी में ही बोलते है। इसकी वजह यह हो सकती है कि वे लोग दक्षिण के और दूसरे प्रान्तों के लोगों के साथ ज्यादा सम्बन्ध जोड़ना चाहते है। वजह कुछ भी सही, पर वह अंग्रेजी में ही बोलते है।

यह जो हमारा विधान बन रहा है, इसमें तरह-तरह की बातें हमारे सामने रखी गई है और उन बातों में से मैं जो समझ पाया हूं उनसे मुझे यह मालूम होता है कि हमारा यह विधान ऊपर से बन रहा है, नीचे से जमीन से नहीं बन रहा है। यदि हमारा विधान जमीन से बनता तो हमारा विधान पहले देशी भाषाओं में बनता। देश के लोग समझते कि जिसे हम स्वराज्य कहते आये है, जिसके लिये हम 30 साल से काम करते आये है, जिसके लिये हम 30 साल से लड़ाई लड़ते आये है और लोगों के सम्पर्क में आये है, वह क्या है और वह समझते कि यह विधान उनके लिये बन रहा है न कि किसी और के लिये। हमारा विधान बनाने में अधिकतर अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि रखी जा रही है, बनिस्वत राष्ट्रीय दृष्टि के, बनिस्वत गांव वालों की दृष्टि के। हम चाहते है कि पहले हमारा विधान सारे देश के लिये देशी भाषा में बनता चाहिये, यह विधान हमारे गांव वालों के लिये बनता चाहिये, जिसमें उनके खाने और कपड़े का प्रबंध हों और जिसके न होने की वजह हमने स्वराज्य मांगा। हमारे लिये यह बहुत ही अच्छा होगा कि हमारी देशी भाषाओं में हमारा विधान बनाया जाये और फिर उसके बाद अंग्रेजी में या दूसरी भाषाओं में, जिनके विधान की नकल की गई है, और जिनको हमें अपना विधान दिखलाना है, उनके लिये उसका अनुवाद कर दिया जाये। अगर हम यह बात पहले ही देख लेते तो अच्छा होता। अगर पहले ही से हम इस बात पर नजर रखते तो आज यहां जितनी बातें की गई है कि यह विधान हमारे देश के लिये अनुकूल नहीं है, गांव वालों के लिये अनुकूल नहीं है, गरीबों के लिए अनुकूल नहीं है, इन बातों के कहने का मौका न मिलता। हमने पहले से इस बात की नजर नहीं रखी इससे ही ऐसा काम हुआ। मैं यह मानता हूं कि जब हम लोगों को अपने गरीबों के लिये खाना और कपड़ा चाहिये, रहने की जगह चाहिये, तो हम लोगों के विधान की बुनियाद सारे गांव होने चाहिये, गांवों की पंचायतें होती चाहिये। उनको ध्यान में रखकर हमें आगे बढ़ना चाहिये। ऐसा न होने की वजह से हमें यह सोचने की जरूरत पड़ती है कि हमारे प्रान्त मजबूत हों या कमजोर हों, या हमारा केन्द्र मजबूत हो या कमजोर हों। यह बात इसीलिये होती है कि हमने विधान बनाने में अपने प्रान्तों और अपने गांवों का ख्याल नहीं रखा। हम लोगों ने अपना सारा विधान इस बात पर निर्भर किया कि हमारा देश किस तरह इंग्लैंड के साथ टक्कर लेगा, या अमरीका के साथ टक्कर लेगा और इनके साथ क्या ताल्लुक रखेगा। इस सारे विधान की देखने से यह महसूस नहीं होता कि हम अपने अन्दर वालों के लिये, अपने गांव वालों के वास्ते या छोटे शहरों के वास्ते, अपने गरीबों के वास्ते क्या करना चाहते है। जहां तक हम लोगों

[श्री एम. सत्यनारायण]

की सम्पत्ति का ख्याल है, गांव वालों से ज्यादा से ज्यादा काम करा कर ज्यादा से ज्यादा सम्पत्ति पैदा कराने की ऐसी कोई बात इसमें नहीं है। मैं समझता हूं कि इसके जवाब में यह कहा जायेगा कि आगे चलकर जब हम विधान को काम में लायेंगे, तो सारी बातें इसमें ले आयेंगे और उन बातों को काम में लाया जायेगा, पर विधान में इन बातों को नहीं रखा जा सकता। लेकिन मैं यह मानने वाला हूं कि जिस तरह किसी के चेहरे को देखकर यह मालूम हो जाता है कि इसके अन्दर क्या है, उसी तरह इस विधान को देखने से साफ मालूम हो जाना चाहिये कि यह विधान किधर आगे बढ़ाने वाला है। इसलिये मैं ऐसा मानता हूं कि जब विधान के ऊपर एक-एक धारा को लेकर विचार किया जायेगा, तो उस वक्त इस बात की कोशिश की जायेगी कि जिस तरह की चीजों को हम अपने देश वालों को देने का वादा करते आये हैं, वह इसमें रखी जायें।

एक बड़ा सवाल यहां पर चार पांच दिन से प्रान्तीय भाषाओं और राज्य भाषा या राष्ट्र-भाषा का चल रहा है कि इन दोनों के बीच में क्या सम्पर्क होना चाहिये। प्रान्तीय भाषाओं को क्या जगह मिलनी चाहिये और राष्ट्रीय-भाषा को क्या जगह मिलनी चाहिये, इस पर काफी बहस मुबाहिसा हुआ है। मैं मानता हूं कि जब तक हम इस बात का निश्चय नहीं करेंगे कि प्रांतीय भाषाओं का क्या स्थान होगा, किस तरह वह भाषाएं प्रान्तों में काम में लाई जायेंगी और लोगों को कैसे उनके सम्पर्क में लाया जायेगा, जब तक राष्ट्र-भाषा का निर्णय नहीं हों सकता। मैं ऐसा मानता हूं कि हमारी जितनी प्रान्तीय भाषायें है, उनको राज्य भाषा से छोटी जगह नहीं मिलनी चाहिये। अगर इसका निर्णय न हुआ तो इसका बहुत आन्दोलन किया जायेगा और लोग इस बात पर बहुत जोर देंगे कि जो उत्तरी प्रान्त है, जहां के लोग यह मानते है कि हिन्दी उनकी मातृभाषा है, वह लोग अपनी भाषा को राष्ट्र-भाषा बनाने की कोशिश कर रहे है। इसका बहुत जोर प्रान्तों पर पड़ेगा और वह मुखालिफत करेंगे और हमारा देश टुकड़ों-टुकड़ों में बंट जायेगा, जैसा कि यह पहले बंटा हुआ था। इसको रोकने के लिये यह बहुत जरूरी है कि प्रांतीय भाषाओं के लिये यह बात साफ कर दी जाये कि किसी भी हालत में राज-भाषा प्रान्तीय भाषाओं का स्थान नहीं ले सकती। अगर ऐसा नहीं करेंगे तो इसमें बहुत बड़ा खतरा होने की गुंजाइश है। इसको दूर करना बहुत जरूरी है। राजभाषा का काम सारे राज को एक करने का होगा। राजभाषा का यह भी कार्य है कि जो अन्तर्राष्ट्रीय

काम है, उनको भी आगे बढ़ा सके मेरा ख्याल यह है कि यह बहुत जरूरी है कि हम लोग एक मिली जुली संस्कृति बनायें, एक मिली जुली भाषा को बनायें और एक मिले जुले समाज को बनायें। हम लोग सदियों से यह करते रहे है कि जो कोई भी इस देश में आया और वह जो कोई भी संस्कृति और भाषा और पोशाक यहां लाया, उसको हमने अपनाया और आगे बढ़ते गये। इसी तरह की रीति हमें आगे भी अख्तियार करनी चाहिये। अगर ऐसा नहीं करेंगे तो बहुत मुमकिन है कि हम अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उस तरह न बढ़ सकेंगे, जैसा कि हमारे प्रधानमंत्री चाहते हैं, बल्कि अपने अन्दरूनी झगड़ों में ही लगे रहेंगे। अगर हम ऐसा न करें तो ज्यादा अच्छा होगा।

इस बात के ऊपर सिर्फ ख्याल करना ही नहीं, बल्कि काम करना बहुत जरूरी है। इसलिये मैं ऐसा मानता हूं कि हमारे देश की जो राष्ट्रीय भाषा होगी और जिसका यहां पर उपयोग होगा, उसमें ऐसी मिली जुली संस्कृति की सन्धि होनी चाहिये और साथ ही साथ ऐसे मिले जुले शब्द होने चाहिये, ऐसा मिला जुला मुहाविरा होना चाहिये और ऐसी मिली जुली लिपि भी होनी चाहिये, जिसमें हम आगे चलकर कम से कम दस पन्द्रह साल तक एक दूसरे को समझकर आगे बढ़ते की कोशिश करें और उस वक्त तक के लिये मिली जुली संस्कृति हो, उसे छोड़ने के लिये कभी भी हम उद्योग न करें। मैं इसे और मुख्तसर में कहने के लिये यह कहना चाहता हूं कि हमारे देश की भाषा हिन्दुस्तानी होती चाहिये, हमारे देश की संस्कृति हिन्दुस्तानी संस्कृति होनी चाहिये। हमारे देश की लिपि जब तक हमारे देश के सब लोग, जो इस वक्त दो अलग-अलग लिपियां लिखते है, वह एक कॉमन लिपि सीख न जाये, तब तक उन सब लिपियों को यहां पर स्थान मिलना चाहिये, ताकि किसी को यह बात कहने का मौका न मिले कि हम यहां पर पचास साल से यह लिपि लिखते आये है और अब स्वराज्य मिलने पर हमारी लिपि को दबाया गया और हमारे धर्म और संस्कृति को दबाया गया। अगर आज हम इस बात के लिये तैयार है कि पन्द्रह-बीस साल तक के लिये अंग्रेजी को रखने की जरूरत है, तो कोई वजह नहीं है कि दूसरी प्रचलित भाषायें भी साथ-साथ उस समय तक न रह सकें। आज दूसरे लोग कहते है कि हमारी भाषा में इतने शब्द आये है, इतने लफ्ज आये है हम उन्हें और आगे बढ़ायें और उनको भी हम रायज रखें और उनका भी इस्तेमाल कर सकें। इसलिये मैं ऐसा

[श्री एम. सत्यनारायण]

मानता हूं कि इन्साफ के ख्याल से और अपनी सुविधा के ख्याल से भी इन बातों का रखना जरूरी है।

मैं कहना तो बहुत चाहता हूं और इस मसले के ऊपर बहुत ज्यादा कहना शायद मुश्किल भी नहीं है। सवेरे से इतने लोगों ने जरूरत से ज्यादा वक्त लिया है और उन पर हमारे सभापति जी ने काफी फब्तियां भी कसी है। इसलिये मैं और ज्यादा समय न लेकर इतने शब्दों के साथ अपना वक्तव्य समाप्त करता हूं कि अभी जो प्रस्ताव हमारे पास आये हैं, वह जब वक्त आयेगा, उस वक्त अगर मुझको मौका मिलेगा, तो मैं अपने और विचार आपके सामने रखने की कोशिश करूंगा।

*__श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार__ (पश्चिमी बंगाल : जनरल): उपाध्यक्ष महोदय, मैं बड़े विनय भाव से प्रेरित होकर इस सभा को जो महत्त्वपूर्ण कार्य इतिहास में समर्पित किया है, उसके सम्बन्ध में बोलने के लिये उठा हूं। उसने इस महान् और प्राचीन देश के लिये, जिसकी सभ्यता उस युग की है जिसका मनुष्य को स्मरण भी नहीं है, एक जनतंत्रात्मक विधान का निर्माण करना है। किसी राष्ट्र को भी सफलता और विफलता, सुख और दुख तथा प्राप्ति और अप्राप्ति का इतना अनुभव नहीं हुआ है, जितना कि हमको हुआ हैं। अपने राज्य तथा अपनी सरकार का स्वरूप निश्चित करते समय हमें इतिहास से जो शिक्षाएं प्राप्त हई हैं, उनमें से कम से कम एक की ओर ध्यान देना चाहिये। वह यह है कि जिस किसी क्षेत्र में भी हमने प्रतिष्ठा प्राप्त की, वह ऐसे काल में प्राप्त की जब भारत राजनैतिक एकता के लिये प्रयत्नशील रहा और इस कार्य में सफल हुआ। इस प्रकार की एकता के लिये हमेशा केन्द्र में कोई न कोई एकता स्थापित करने वाली प्रबल शक्ति रही। उस शक्ति का स्वरूप विभिन्न कालों में विभिन्न रहा और हमें भी ऐसी शक्ति को स्थापित करना होगा, जो वर्तमान काल के लिये उपयुक्त हो, परन्तु सत्य यही है कि भारत की महानता एक शक्तिशाली एकता स्थापित करते वाले केन्द्र पर निर्भर ही है और निर्भर रहेगी। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि हमारे विधान में एक शक्तिशाली केन्द्र की व्यवस्था की जाये और मुझे इसका हर्ष है कि मसौदा-समिति ने इसे मुख्यत: अपनी दृष्टि में रखा। ऐतिहासिक कारणों के फलस्वरूप तथाकथित 'प्रान्तीय स्वायत्त-शासन' की उत्तरोत्तर जो मांग की गई, उसे अब दबाने की आवश्यकता है। जब सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया, तो

हमें ज्ञात है कि यह देश 52 स्वायत्तशासी प्रदेशों में विभाजित था और हमें यह भी ज्ञात है कि इसका क्या परिणाम हुआ। जब केन्द्र अनुत्तरदायी था और उस पर विदेशियों का पूर्ण प्रभुत्व था, तो इसे किसी प्रकार ठीक भी कहा जा सकता था। उस समय भी 'प्रान्तीय स्वायत्त-शासन' से प्रान्तीयता को प्रोत्साहन मिला। इस अभिशाप की केवल इस कारण वृद्धि न हुई है कि अखिल भारतीय कांग्रेस का प्रान्तीय मंत्रिमंडलों पर नियंत्रण था और उसके प्रभाव के कारण देश का एकीकरण ही होता था। अब देश में कोई विदेशी शक्ति नहीं रही हैं और इसलिये अब केन्द्र और प्रान्तों के बीच कोई कलह न होना चाहिये। जहां तक प्रान्तों का प्रश्न है, जब कभी प्रान्तों के बीच विद्वेष इतना बढ़ जाये कि उससे देश की एकता ही संकट में पड़ जाये, या देश की उन्नति अवरुद्ध हो जाये, तो ऐसे समय में हस्तक्षेप करने की शक्ति यदि केन्द्र को हो, तो कलह की सम्भावना बहुत कम रह जायेगी। इसलिये मैं यह चाहता हूं कि केवल युद्धकाल में या सद्यस्कृत्यस्थिति के समय ही राज्य की एकात्मक राज्य के रूप में कार्य न करना चाहिये, बल्कि शान्तिकाल में भी केन्द्र को हस्तक्षेप करने की कुछ शक्तियां प्राप्त होनी चाहिये, क्योंकि बिना इसके देश का पुनर्निर्माण सम्भव न हो सकेगा।

शक्तियों के सीमाकरण के विषय के सम्बन्ध में डा. अम्बेडकर ने भारतीय इतिहास में ग्रामीण लोगों के स्थान के बारे में जो आलोचना की है, उसके बारे में मैं कुछ ही बातें कहकर सन्तोष कर लूंगा। यह सच हैं कि कुछ कालों में जब देश में बड़ी-बड़ी ऐतिहासिक घटनाएं हुई, तो ग्रामीण लोग प्रभावशून्य रहे। परन्तु यह उन्हीं कालों में हुआ, जब राष्ट्र निस्तब्धता और अकर्मण्यता की प्राप्त था और राजनैतिक जीवन भी विच्छिन्न हो रहा था। ऐसे ही समय में हमारे ग्राम इतिहास की गतिविधि के प्रति उदासीन रहे। परन्तु ऐसे भी काल रहे हैं, जब राष्ट्रीय जीवन स्वस्थ रहा है और जब हमारे ग्राम शक्ति संचय में अपना योग देते रहे हैं मुझे इसका विश्वास है कि यदि हमारे ग्रामों को फिर से अनुप्राणित किया जाये और शक्ति से परिचित कराया जाये, तो वे हमारे राज्य के शक्ति-स्तम्भ ही प्रमाणित न होंगे, बल्कि उन्हीं से उसे मुख्यत: शक्ति प्राप्त होगी।

भारत को हमेशा इसका गर्व रहा है और मुझे भी इसका गर्व है कि देश में अनेकता होते हुए भी उसने सांस्कृतिक एकता प्राप्त की है। परन्तु इस समय हमारे राजनैतिक जीवन में यह आवश्यक हैं कि हम अनेकता से अधिक एकता

[श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार]

और एकरूपता पर ही जोर दें। इसलिये मैं सारे देश के लिये एक समान राजनैतिक ढांचा चाहता हूं। हमारे उपप्रधान मंत्री के क्रियात्मक तथा प्रेरणाप्रदायक नेतृत्व में स्टेट्स मिनिस्ट्री ने देश के एकीकरण का जो महत्त्वपूर्ण कार्य किया है और कर रही हैं, इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाये वह कम है। मुझे आशा है कि वह कार्य उस सीमा तक पहुंच जायेगा, जब कि प्रतिस्पर्धा राज्यों और राज्य-संघों में देश के राजनैतिक ढांचे के अन्दर वही शासन-व्यवस्था हो जायेगी, जैसी कि अन्य प्रदेशों में हैं, अर्थात् जैसी कि वर्तमान प्रान्तों में है। जैसा कि मसौदा-समिति के सभापति महोदय ने स्वयं कहा है। इन प्रदेशों में ऐसी आधारभूत समानताएं है कि मैं नहीं चाहता कि उन्हें 'स्टेट (राज्य)' भी कहा जाये, क्योंकि इससे यह अर्थ बोध हो सकता हैं कि भारतीय संधान संयुक्त राज्य अमेरिका के समान है। सभी प्रदेशों की, चाहे वे वर्तमान प्राप्त हो अथवा समाविष्ट राज्य हो, समान रूप से 'प्राविंस (प्रांत)' का ही नाम दिया जाये।

मुझे अपनी भाषा की उन्नति का तो गर्व हैं ही, परन्तु साथ ही मुझे भारत की प्रमुख भाषाओं की उन्नति का भी गर्व हैं। निस्सन्देह मैं सारे देश के लिये एक राष्ट्र-भाषा के पक्ष में हूं, परन्तु साथ ही मेरी यह भी धारणा है कि यदि हमने प्रमुख प्रान्तीय भाषाओं के प्रति उदासीनता दिखा कर उन्हें अशक्त बना दिया, तो इससे जो हानि होगी उसे कभी भी पूरा न किया जा सकेगा। जिस भाषा को भी हम राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार करें, उसे किसी के ऊपर लादा न जाये। यदि उसे धीरे-धीरे और स्वाभाविक रूप से प्रविष्ट किया जायेगा, तो सभी उसे स्वेच्छा से स्वीकार करेंगे और उससे यह भावना उत्पन्न न होगी कि वह एक प्रकार से बलपूर्वक लादी गई है। मुझसे पहले बोलने वाले वक्ता महोदय इसके प्रत्यक्ष उदाहरण है। उन पर किसी ने हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी लादी नहीं, परन्तु माननीय सदस्यों ने अभी देखा कि कितने प्रवाह से वे अभी बोले। जहां तक अंग्रेजी का सम्बन्ध है, हम अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार के माध्यम के रूप में उसकी उपयोगिता की उपेक्षा नहीं कर सकते। देश के अन्दर भी उसके प्रयोग के सम्बन्ध में मैं हिंसापूर्वक उसका गला घोट देने के पक्ष में नहीं हूं, परन्तु यह चाहता हूं कि वह धीरे-धीरे हटाई जाये। मेरे विचार से इस सम्बन्ध में किसी काल-सीमा को निश्चित करना ठीक न होगा।

यह एक दुर्भाग्य की बात है कि एक भाषा भाषी प्रान्तों के प्रश्न को प्रान्तीयता के प्रश्न के साथ जोड़ दिया गया है। एक भाषा भाषी प्रान्तों के सिद्धान्त का दो कारणों से समर्थन किया जा सकता है। अर्थात् शासन-प्रबन्ध और शिक्षा-सम्बन्धी सुविधा की दृष्टि से और हमारी प्रमुख भाषाओं की उन्नति की दृष्टि से, इस सम्बन्ध में किसी और प्रश्न पर विचार करना असंगत होगा। दुर्भाग्य से इस विषय पर बहुत ही उत्तेजनापूर्ण विवाद और कलह मचा हुआ है। सम्भवत: अब भी हम पर उसी खिन्नावस्था का प्रभाव अवशेष है, जो कुछ ही समय पूर्व समाप्त हुई है और जिस अवस्था में हमारे विदेशी शासकों ने विभाजन की भावना को प्रोत्साहित किया तथा सुदृढ़ बनाया। मुझे आशा है कि कुछ समय के उपरान्त हम वस्तुस्थिति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। यह आवश्यक है कि इस समय सभी प्रकार के आन्तरिक कलहों का परित्याग किया जाये। इसलिये प्रान्तों का भाषा के आधार पर पुनर्निर्माण करने के प्रश्न को यदि इस समय बिना कटुता और कलह के हल नहीं किया जा सकता, तो मेरे विचार से इस प्रश्न को दस वर्ष के लिये स्थगित कर देना चाहिये। मेरा केवल यह अनुरोध हैं कि विधान में कोई ऐसा प्रावधान न रखा जाये, जिसके कारण भविष्य में इस प्रश्न को हल करते में कठिनाई का अनुभव हो। साथ ही मैं अपने सभी देशवासियों से यह भी प्रार्थना करता हूं कि वे कोई ऐसी बात न करें, जिससे हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी के राष्ट्र-भाषा होते के अधिकार को हानि पहुंच। भारत की सभी प्रमुख भाषाओं के प्रति मुझे प्रेम है और मैं इस आवश्यकता को भी अनुभव करता हूं कि हमारे देशवासी विधान की समझें और उसका अनुसरण करें। इसी कारण मैंने यह कहा है कि विधान की सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में उपलब्ध कम देना चाहिये और विधान को उसके अन्तिम रूप में स्वीकार करते के पूर्व उसे भारतीय भाषाओं में लिखे हुए रूपान्तरों का अनुमोदन कर लेना चाहिये।

मुझे केवल एक शब्द और कहना हैं। मुझे आशा हैं कि गांधीवाद के इस युग में मेरे शब्दों से अर्थभ्रम न होगा। मैं लोगों के शस्त्र-धारण करने के सम्बन्ध में कुछ शब्द कहना चाहता हूं। हम विधान को आज स्वीकार कर रहे हैं। परन्तु जहां तक मैं समझता हूं इस सम्बन्ध में उसमें कोई उल्लेख नहीं हैं। मैं यह चाहता हूं कि इस सभा की मूलाधिकार के रूप में विधान में यह प्रावहित करना चाहिये

[श्री सुरेशचन्द्र मजूमदार]

कि सभी प्रौढ़ वयस्कों को, यदि कभी भारत माता संकट में पड़े, तो उस समय उसके रक्षार्थ शस्त्र-धारण करने का अधिकार होगा। जय हिन्द।

*पं. **मुकुट बिहारी लाल भार्गव** (अजमेर मेरवाड़ा): उपाध्यक्ष महोदय, पिछले कई दिनों से इस सभा में विधान के मसौदे की आलोचना होनी रही हैं। मैं पूरे विधान के मसौदे के सम्बन्ध में नहीं बोलूंगा, बल्कि उसके केवल एक अंग के सम्बन्ध में अपनी सम्मति प्रकट करूंगा, अर्थात् मैं अपने को विधान के मसौदे के भाग 7 तक ही सीमित रखूंगा। उसमें भारत सरकार के सन् 1935 ई. के एक्ट के अधीन चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का वर्णन है। मैं आरम्भ में ही आदरपूर्वक इस सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूं कि चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के सम्बन्ध में मसौदा-समिति तथा उसके सभापति ने बड़ा अन्याय किया है। वास्तव में विधान के मसौदे के भाग 7 में मसौदा-समिति ने जो सिफारिशें की है उनको देखने से यह पता लगता है कि वह अपने अधिकारों से परे चली गई है। इस सभा ने 29 अगस्त सन् 1947 ई. को जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, वह इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्पष्ट है और यदि आवश्यक समझा जाये, तो उसे देखा जा सकता हैं, क्योंकि उसी के अनुसार मसौदा-समिति अस्तित्व में आई। उस अवसर पर सभा ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया था, उसमें मसौदा-समिति की शक्तियां निश्चित की गई है। केवल सभा के निर्णयों की कार्यान्वित करते के लिये उसे बनाया गया था। जब इस सभा में चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का प्रश्न उठा था, तो संघीय विधान-समिति ने यह सिफारिश की थी, जैसा कि आप उसके प्रतिवेदन के भाग 8 के खण्ड 1 में देख सकते हैं कि चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का शासन केन्द्र उसी प्रकार करता रहे, जैसे कि वह भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम के अधीन करता रहा है। जब संघीय विधान समिति के प्रतिवेदन के भाग 8 खण्ड 1 की माननीय श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर ने इस सभा में उपस्थित किया था, तो मेरे मित्र श्री देशबन्धु गुप्त ने उसमें एक संशोधन का प्रस्ताव किया था और वह एकमत से स्वीकार कर लिया गया था। उस संशोधन का उद्देश्य यह था कि इस आदरणीय सभा के सात सदस्यों की एक तदर्थ समिति बनाई जाये, जो चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों के प्रश्न पर विचार करें और इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्थाओं में जनतंत्रात्मक आधार पर ऐसे परिवर्तन करते के लिये सुझाव उपस्थित करें, जो देश की बदली हुई परिस्थिति के अनुकूल

हों। इस संशोधन का इस सभा द्वारा एकमत से स्वीकार होने के स्पष्ट अर्थ यह है कि यह सभा इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्थाओं में जनतंत्रात्मक आधार पर ऐसे परिवर्तन करने के लिये वचनबद्ध है, जो स्वतंत्र भारत के गणतंत्रात्मक विधान के अनुरूप हों। इस सभा का यह आदेश होते हुये भी मसौदा-समिति ने विधान के वर्तमान मसौदे के अनुच्छेद 212 से 214 में ऐसी सिफारिशें की है, जिनको देख कर दु:ख होता है। मेरा नम्र निवेदन यह है कि चूंकि मसौदा-समिति तदर्थ समिति की सिफारिशों की उपेक्षा नहीं कर सकती थी, इसलिये उसे इस प्रकार की सिफारिश करने का अधिकार नहीं था। तदर्थ समिति में इस सभा के तीन प्रतिष्ठित सदस्य थे। वे श्री एन. गोपालास्वामी आयंगर, श्री सन्तानम् और श्री पट्टाभि सीतारमय्या थे। यह सब होते हुये भी तदर्थ समिति ने एकमत से जो सिफारिश की थी, उसका 212 से 214 तक के अुनच्छेदों से खण्डन कर दिया गया है। अनुच्छेद 212 में यह प्रावहित है कि चीफ कमिश्नर के प्रान्तों का शासन राष्ट्रपति चीफ कमिश्नर द्वारा उस सीमा तक करता रहेगा, जिसे कि वह उपयुक्त समझे। मसौदा-समिति ने इस अनुच्छेद 212 में केवल भारत-सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम की धारा 93(3) के शब्दों को दुहराया है। श्री गुप्त के संशोधन को स्वीकार करने से इस सभा ने इन्हीं शब्दों का शून्यन कर दिया था। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि अनुच्छेद 212 और 213 में मसौदा समिति अपने अधिकारों से परे चली गई है और इस सभा को उन पर विचार न करना चाहिये। तदर्थ समिति ने चीफ आयुक्तों के प्रान्तों के प्रश्न पर विचार किया और उसने उनकी वर्तमान शासन-व्यवस्था में परिवर्तन करने के लिये कुछ सिफारिशें की। वास्तव में आधुनिक युग में, जब कि भारत ने अपने स्वतंत्रता के लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है और जब हम यहां इसलिये एकत्रित हुये कि हम एक ऐसा विधान बनायें, जो स्वतंत्र गणतंत्रीय भारत के लिये उपयुक्त हो, हम एक ऐसी सिफारिश की कल्पना भी नहीं कर सकते, जो 212 से लेकर 214 तक के अुनच्छेदों द्वारा की गई है। इन सिफारिशों का उद्देश्य स्वेच्छाचारिता की शासन-व्यवस्था को चिरस्थायी बनाना ही है। मुख्यायुक्तों के प्रान्त स्वेच्छाचारी तथा नौकरशाही शासनों के अड्डे रहे है और यद्यपि पूर्ण स्वतंत्रता को प्राप्त किये पन्द्रह महीने हो गये है, परन्तु हम आज भी यह देखते है कि वहां केवल स्वेच्छाचारिता का ही बोलबाला है। राजनैतिक कारणों से तथा अपनी चालों को सफल बनाने के लिये ब्रिटिश सरकार मुख्यायुक्तों के प्रान्तों की उत्तरदायी शासन की स्थापना को मांगों की उपेक्षा करती रही। उसने सन् 1924 में केवल एक रियायत की और उनको विधान-मण्डल में एक जगह

[पं. मुकुट बिहारी लाल भार्गव]

दे दी। इसके अतिरिक्त इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्था इस प्रकार की है कि केवल एक आदमी शासन करता है। जहां तक अजमेर-मेरवाड़ा का सम्बन्ध है, वहां का शासन तो दुराचार, पक्षपात और अकौशल से परिपूर्ण है जब तक लोगों के विश्वास पात्र प्रतिनिधियों को वहां की शासन-व्यवस्था में अधिकार न दिया जायेगा और उनकी बात न मानी जायेगी, तब तक इस निन्दनीय अवस्था का कैसे अन्त हों सकता है? उनमें से प्रत्येक ने इन मुख्यायुक्तों के प्रान्तों में उत्तरदायी शासन स्थापित करने की मांग की है। पिछले तीन वर्षों में अजमेर-मेरवाड़ा में तीन सम्मेलन हो चुके है और उनमें तुरन्त ही उत्तरदायी शासन स्थापित करने की मांग को दुहराया गया। प्रान्तीय कांग्रेस समितियों ने भी प्रत्येक स्थान में वही मांग की है। परन्तु इसके होते हुये भी स्वेच्छाचारी शासन चलता रहा है और विधान के मसौदे के 212 से लेकर 214 तक के तीन अनुच्छेदों का यही उद्देश्य है कि उसे चिरस्थायी बनाया जाये। मैं इस सभा से यह अनुरोध करता हूं कि यह एक ऐसी सभा द्वारा कैसे सहन किया जा सकता है, जो स्वतंत्र भारत का विधान बनाने के लिये एकत्रित हुई है? कल राजपूताना के एक संघ की ओर संकेत किया गया था। हम सब लोग चाहते है कि राजपूताना की विभिन्न रियासतों की शासन-व्यवस्थाओं तथा प्रदेशों का एकीकरण हो और यह शीघ्रातिशीघ्र कार्य रूप में आ जाये। परन्तु उस समय तक वर्तमान शासन-व्यवस्थाओं को रहने क्यों दिया जाये? हम नहीं जानते है कि राजपूताना संघ का भविष्य में कैसा चित्र होगा। यदि वह स्थापित हुआ, तो अजमेर-मेरवाड़ा उसका स्वागत करेगा और यदि उसमें उसका ऐतिहासिक, भौगोलिक तथा सांस्कृतिक महत्त्व वही रहा, जो उसका इतिहास के आदिकाल से लेकर पठान, मुगल, मरहटों तथा अंग्रेजों के काल में रहा है, तो वह सहर्ष उसमें सम्मिलित हों जायेगा, परन्तु चूंकि ऐसे संघ के स्थापित होने की सम्भावना है, इसका यह अर्थ नहीं है कि स्वेच्छाचारी शासन चलता रहे। दूसरे चीफ कमिश्नर के प्रान्त अर्थात् दिल्ली की ओर भी कल संकेत किया गया था। कुर्ग का जहां तक प्रश्न है, उसकी अवस्था भी इन्हीं के समान है। वहां विधान-मण्डल का काम केवल परामर्श देना है। उसे न कानून बनाने का अधिकार है और न प्रतिदिन के शासन-प्रबन्ध में उसकी कुछ सुनी जाती है। वहां भी लोगों की यही मांग है कि उत्तरदायी शासन की स्थापना हो। मेरी समझ में नहीं आता कि तदर्थ समिति की सभी सिफारिशों को स्वीकार करने में इस सभा को क्या आपत्ति हो सकती है।

तदर्थ समिति ने बड़ी सावधानी के साथ सिफारिशें की है। उसने सिफारिश की है कि इन प्रदेशों की आर्थिक कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुये यह आवश्यक है कि केन्द्र को उनके सम्बन्ध में शासकों के प्रान्तों की तुलना में अधिक अधिकार प्राप्त हों। हम लोगों ने, जो मुख्यायुक्तों के प्रान्तों के प्रतिनिधि है अनिच्छा होते हुये भी केवल समझौते की दृष्टि से प्रतिबन्धों को स्वीकार किया है। केवल नाममात्र को ही आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान की गई है, क्योंकि सभी अर्थ-सम्बन्धी प्रस्तावों के लिये संघ के राष्ट्रपति की स्वीकृति अपेक्षित होगी। इसी प्रकार कानून के क्षेत्र में यह सिफारिश की गई है कि प्रत्येक विधेयक को कानून का रूप देने के पहले संघ के राष्ट्रपति की स्वीकृति अपेक्षित होगी। तदर्थ समिति के प्रतिवेदन में यह भी प्रावहित है कि यदि कभी उपशासक और मंत्रियों के बीच मतभेद हों, तो राष्ट्रपति का निर्णय अन्तिम होगा। इसलिये इन सिफारिशों को स्वीकार करने में और अजमेर-मेरवाड़ा तथा अन्य मुख्यायुक्तों के प्रान्तों को किसी प्रकार का उत्तरदायी शासन प्रदान करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती है।

प्राय: यह तर्क उपस्थित किया गया है कि यह प्रदेश अपना जीवन धारण करने में समर्थ नहीं है। यह स्वावलम्बी नहीं है और यहां जीवनोपयोगी वस्तुओं की कमी रहती है। मैं आदरपूर्वक पूछता हूं कि इसका दोष किस पर है? अजमेर-मेरवाड़ा के लोग कभी भी यह नहीं चाहते थे कि उनको पृथक् किया जाये और उनके प्रदेश को राजपूताना के राज्यों के बीच में एक द्वीप के समान बना दिया जाये। इस समय की केन्द्रीय सरकार ही इसके लिये उत्तरदायी है और उसी ने यह निर्णय किया कि अजमेर-मेरवाड़ा को एक पृथक् प्रदेश बनाया जाये, ताकि पड़ोस के राज्यों पर दृढ़ता से अपना प्रभुत्व जमाये रखने के लिये वह केन्द्र का एक गढ़ सिद्ध हों। इसके लिये अब लोगों को क्यों दंडित किया जाये? जैसा कि मैंने कहा है, राजनैतिक कारणों से तथा प्रभुत्व जमाये रखने के लिये ही उसे एक द्वीप के रूप में छोड़ दिया गया था। इस अवस्था में क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि केन्द्रीय सरकार सीमाप्रान्त को लगभग एक करोड़ रुपये और सिंध को भी आर्थिक सहायता क्यों देती थी? यदि अब वह आसाम, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल और पूर्वी पंजाब को सीमाओं के रक्षार्थ तथा प्रभुत्व बनायें रखने के लिये आर्थिक सहायता देने का निश्चय करे, तो अजमेर-मेरवाड़ा को भी आर्थिक सहायता क्यों न दी जाये? जिन कारणों को मैंने सभा के सम्मुख उपस्थित किया है, उनको दृष्टि में रखते हुये मैं यह कह सकता हूं कि मसौदा-समिति अपने अधिकारों के

[पं. मुकुट बिहारी लाल भार्गव]

परे चली गई है। यह सभा इस प्रान्त की शासन-व्यवस्था में यथोचित परिवर्तन करने की नीति को अपनाने के लिये वचनबद्ध है और इसलिये उसने जो तदर्थ समिति नियुक्त की थी, उसकी सिफारिशों को स्वीकार कर लेना चाहिये। इन शब्दों के साथ विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, उसका मैं समर्थन करता हूं।

***उपाध्यक्षः** यह एक स्वीकृत प्रथा है कि यदि किसी सदस्य को सभा के वादानुवाद में भाग लेने के लिये पुकारा जाये और वे उस समय अनुपस्थित हो, तो बोलने का अधिकार खो बैठते है। इस सभा की आज की बैठक के आरम्भ में हमारे एक सहकारी के साथ यही बात हुई। उन्होंने मुझे बताया है कि वे ऐसे कारणों से अनुपस्थित रहे, जिनको उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। यदि मुझे सभा आज्ञा दें, तो मैं उन्हें बोलने का एक दूसरा अवसर दें दूंगा। चूंकि किसी को आपत्ति नहीं है, इसलिये मैं उन्हें बोलने की आज्ञा देता हूं और सभा के सम्मुख भाषण देने के लिये कहता हूं।

***श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव** (मैसूर): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे पर मुझे बोलने का अवसर प्रदान करने के लिये मैं आपको धन्यवाद देता हूं। मसौदा-समिति और उसके सभापति डा. अम्बेडकर का विभिन्न वक्ताओं ने जो प्रशंसा-गान किया है, उसमें मैं भी अपना योग देना चाहता हूं।

विधान के इस मसौदे में संसार के एकात्मक तथा संधानीय दोनों प्रकार के प्रजातंत्रात्मक विधानों में जो अच्छी बातें है, उन्हें प्रविष्ट करने का प्रयास किया गया है। निस्संदेह कोई भी विधान दोषमुक्त नहीं हो सकता है और हमें अपने विधान में भी उसे स्वीकार करने के पहले कुछ परिवर्तन करने होंगे।

मैं पहले नीति के निदेशक सिद्धान्तों की चर्चा करूंगा। मेरा यह निवेदन है कि इनमें समाजवादी शासन के परमाणु है। मेरा यह निवेदन है कि इस अध्याय को प्रस्तावना के बाद ही रखा जाये। चूंकि ये लक्ष्य-सम्बन्धी सिद्धांत है, इसलिये इस प्रकार हम इन्हें अन्य सिद्धान्तों से अधिक पवित्र बना देंगे और वे भविष्य की सरकार का भी पथप्रदर्शन करेंगे। कुछ परिवर्तनों के साथ इनको भारत की भावी पार्लियामेंट के समाजवादी कार्यक्रम के आधारभूत सिद्धान्त माना जा सकता है।

इसके अतिरिक्त मैं मूल सिद्धान्तों की ओर संकेत करना चाहता हूं। मैं यह देखता हूं कि कुछ महत्त्वपूर्ण बातें छोड़ दी गई है। अधिकांश प्रजातंत्रात्मक विधानों में समाचारपत्रों की स्वतंत्रता प्रत्याभूत है, परन्तु मैं यह देखता हूं कि हमारे विधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है। निस्संदेह अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रावहित है। परन्तु मैं यह अनुभव करता हूं कि एक ऐसे देश में जहां 87 प्रतिशत लोग निरक्षर है, हमारे समाचार-पत्रों को राजनैतिक तथा जनतंत्र के क्षेत्रों में जनसाधारण को शिक्षित बनाने के लिये एक महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। मेरी यह धारणा है कि मूल सिद्धान्तों में समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता प्रत्याभूत करने के लिये एक विशेष प्रावधान रखा जाना चाहिये। वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका के विधान में यह प्रावधान है कि राज्य कोई ऐसा कानून न बनायेगा, जिससे कि समाचार-पत्रों की स्वतंत्रता सीमित हों जाये। इसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन की पवित्रता तथा शांति को सुरक्षित रखने की प्रत्याभूति दी जानी चाहिये। इसी प्रकार मेरे विचार से भारत के किसी नागरिक को भी राज्य से निर्वासित न करना चाहिये। मूलाधिकारों के अध्याय में इस प्रकार के प्रावधान को स्थान देना चाहिये।

धर्म का प्रचार करने की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में जो प्रावधान रखा गया है, उसमें से मैं चाहता हूं कि एक बात निकाल दी जाये। यह अधिकार, जो कुछ लोगों को प्रान्त रहा है, हमारे देश के राजनैतिक जीवन में एक अभिशाप सिद्ध हुआ है। सम्भवतः पुरानी व्यवस्था को ध्यान में रखते हुये ही इस प्रकार के प्रावधान को स्थान देना उचित समझा गया है। मेरा इस सभा से यह निवेदन है कि एक असाम्प्रदायिक राज्य में, विशेषतः जब कि धर्म का अवाध रूप से आचरण करने तथा विचारों की स्वतंत्रता की प्रत्याभूति दी गई है, इस प्रकार के प्रावधान को हमारे विधान से निकाल देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त प्रान्तों की सीमाओं के पुनर्निर्धारण का प्रश्न है। मैं उन लोगों में से नहीं हूं, जो इस प्रश्न को हल करने में संकट का अनुभव करते है। यदि एक भाषा-भाषी प्रान्त स्वतंत्रता संग्राम में शक्तिशाली गढ़ सिद्ध हुये है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि जब वे भाषा के आधार पर, प्रान्तों के निर्माण की मांग करने है, तो उनको विघटनशील कह कर निन्दित कैसे किया जा सकता है। वास्तव में प्रत्येक नागरिक को यह अनुभव करना चाहिये कि उसे स्वतंत्रता प्रान्त है। मेरी यह धारणा है कि प्रत्येक प्रदेश की पार्लियामेंट को अपने ही प्रदेश की भाषा को

[श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव]

स्वीकार करना चाहिये। निस्संदेह बम्बई और मद्रास के समान बहुभाषा-भाषी प्रान्तों का कोई स्थान नहीं है।

प्रान्तों का भाषा के आधार पर निर्माण होना चाहिये। परन्तु इस प्रश्न को हल करने के लिये हम एक दूसरे का सर तोड़ने नहीं जा रहे हैं। इसे शांतिपूर्वक समझौते और सहयोग से हल किया जा सकता हैं।

इसी प्रकार भाषा का भी प्रश्न है। दक्षिण भारत की भाषाओं में स्वतंत्रता से संस्कृत से शब्द लिये गये है। द्राविड़ी भाषाओं में तत्सम शब्द भी हैं और तद्भव शब्द भी। मैं यह अनुभव करता हूं कि देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी हमें स्वीकार्य होगी, परन्तु मेरे विचार से उसे हम पर एकाएक न लादा जाना चाहिये, क्योंकि दक्षिण भारत के निवासियों की संख्या अत्यधिक हैं। उसका धीरे-धीरे प्रवेश होना चाहिये। हम देवनागरी लिपि के साथ हिन्दी को भारत की सरकारी भाषा स्वीकार करने के लिये तैयार है, परन्तु हमें हिन्दी सीखने के लिये समय मिलना चाहिये। इस विधान में इस सभा के प्रत्येक वर्ग को बुद्धिमत्ता प्रतिबिम्बित होनी चाहिये। यदि आप हमें अपने साथ ले चलना चाहते हैं, तो हमें आपके तर्कों को समझना चाहिये, आपके दृष्टिकोण की समझना चाहिये और हमें इस विधान को ऐसा रूप देना चाहिये कि वह सभी को स्वीकार्य हो। इसी प्रकार उन लोगों को जो उर्दू लिपि में लिखते पढ़ते है, देवनागरी लिपि सीखने के लिये कुछ समय देना चाहिये बेगम ऐजाज रसूल का भी यही सुझाव हैं।

प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित राज्यों के सम्बन्ध में भाग 7 के प्रावधानों के सम्बन्ध में अर्थात् 212 से लेकर 214 तक के अनुच्छेदों के सम्बन्ध में, मैं एक बात और कहना चाहता हूं। मेरे विचार से उन्हें विधान में स्थायी रूप से स्थान न मिलना चाहिये। वास्तव: में भारत सरकार की यह नीति रही है कि राज्यों को स्वावलम्बी प्रदेशों का रूप दिया जाये। 212 से लेकर 214 अनुच्छेदों से तथा मसौदा-समिति ने जिन संशोधनों का सुझाव किया हैं, उनसे केवल देश में इन छोटे-छोटे खर्चीले राज्यों की संख्या बढ़ जायेगी। लेफ्टिनेण्ट गवर्नरों, मन्त्रिमण्डलों इत्यादि के लिये प्रावधान रखे गये है। यदि इन्हें विधान में स्थायी रूप में स्थान दिया गया, तो मेरे विचार से देश छोटे-छोटे प्रदेशों में बंट जायेगा और केन्द्र पर इन खर्चीले प्रदेशों के संधारण का भार पड़ेगा। इन छोटे-छोटे प्रदेशों

की थोड़े ही समय में उन बड़े-बड़े प्रान्तों और राज्यों में समाविष्ट होने के लिये, प्रोत्साहित करना चाहिये, जिनके बीच में वे स्थित हैं। उदाहरण के लिये कुर्ग के प्रान्त को ही लीजिये। उसका क्षेत्रफल केवल 1,500 वर्ग मील हैं और उसकी जनसंख्या 160,000 है। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि जब से कुर्ग का आयव्ययक केन्द्रीय आयव्ययक से पृथक कर दिया गया है, वह प्रान्त निर्माण की किसी भी योजना को कार्यान्वित नहीं कर पाया है। वह एक ऐसे पुल की भी मरम्मत नहीं कर पाया, जिस पर केवल 5,000 रु. खर्च होता।

भारत की राजधानी के सम्बन्ध में, मैं मैसूर के अपने माननीय मित्र के इस सुझाव से सहमत हूं कि पूर्वी पंजाब की राजधानी और दिल्ली के प्रसार पर बहुत बड़ी धनराशि खर्च करने के पूर्व हमें राजधानी को किसी केन्द्रीय स्थान में स्थित करने के प्रस्ताव पर विचार करता चाहिये।

दिल्ली को केन्द्र प्रशासित क्षेत्र के रूप में रखना न्यायसंगत हो सकता हैं, क्योंकि यह राजधानी हैं; परन्तु इसका कदापि यह अर्थ नहीं हैं कि केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों की संख्या बढ़ाई जाये। वास्तव में केन्द्रीय सरकार को दो रूप में कार्य करना होगा, एक तो केन्द्रीय सरकार के रूप में और दूसरे केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों के लिये प्रान्तीय सरकार के रूप में। मैं नहीं समझता कि केन्द्र के लिये इन खर्चीले प्रदेशों पर बड़ी-बड़ी धनराशि खर्च करने के लिये कोई न्यायसंगत कारण है।

श्री अनन्तशयनम् आयंगर और प्रोफेसर रंगा दोनों ने यह पूछा है कि राज्यों के लिये विधान-परिषद् हो ही क्यों? मेरा यह निवेदन हैं कि इसके लिये हम दोषी नहीं ठहराये जा सकते। पिछली जुलाई को जैसे ही हम लोग यहां आये, राज्यों के कुछ प्रतिनिधियों ने इस आदरणीय सभा के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि राज्यों के लिये एक अनुकरणीय विधान बनाने के लिये एक समिति बनाई जाये। यदि कार्यवाह समिति की पुस्तकों को देखा जाये, तो उनमें इस प्रकार का प्रस्ताव मिलेगा। परन्तु दुर्भाग्य से इस सभा ने कोई कार्यवाही नहीं की और ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि अपने राज्यों में उत्तरदायी शासन के लिये संग्राम करते हुये हमें उनके लिये विधान-परिषदों की मांग करनी पड़ी। मैं इसमें कोई हानि नहीं देखता हूं, क्योंकि इन विधान-परिषदों द्वारा बनाये हुये विधान इस सभा द्वारा निर्माण किये हुये विधान के सिद्धान्तों का खण्डन न करेंगे। उन्हें सारे भारत

[श्री एस.वी. कृष्णमूर्ति राव]

की रूप रेखा के अनुरूप ही होना होगा। जब तक वे इस प्रकार कार्य करते रहें, मैं नहीं समझ पाता कि उन्हें अपना कार्य क्यों न समाप्त करने दिया जाये।

एक सुझाव इस प्रकार का उपस्थित किया गया है कि राज्यों और प्रान्तों की शक्तियां एक समान होनी चाहिये। इस सम्बन्ध में श्रीमान्, ट्रावनकोर और मैसूर जैसी रियासतों की ओर से बोलते हुये मेरा यह निवेदन है कि ये रियासतें औद्योगिक तथा आर्थिक दृष्टि से कुछ प्रान्तों से बहुत आगे है। मेरा इस सभा से यह निवेदन है कि प्रान्तों और रियासतों के बीच एकरूपता लाने के लिये किसी को नीचे न गिराया जाये, केवल ऊंचा उठाने का प्रयास किया जाये। अखिल भारतीय प्रश्नों की हल करने में मैसूर सहयोग करता रहा है और इस समय भी सहयोग कर रहा है और मुझे विश्वास है कि एकरूपता लाने में भी वह सहयोग करेगा; परन्तु वह केवल इसी को सामने रखेगा कि ऊपर उठाने के लिये ही प्रयास किया जाये और नीचे गिराने के लिये नहीं। वास्तव में मेरी तो यह धारणा है कि रियासतों की और प्रान्तों को एक समान शक्तियां प्राप्त होनी चाहिये। मैं यह चाहता हूं कि सर्वोच्च न्यायालय की केवल वैधानिक विषयों के सम्बन्ध में ही नहीं, किन्तु व्यवहार और दण्ड के विषयों के सम्बन्ध में पुनर्विचार की शक्तियां दी जानी चाहिये। मुझे इसकी प्रसन्नता हैं कि मसौदा-समिति ने इसे प्रावहित किया है और मुझे इसका विश्वास है कि रियासतें इस प्रावधान से लाभ उठायेंगी।

इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति के अर्थ सम्बन्धी अधिकारों के सम्बन्ध में मैं अनुच्छेद 258 पर अपने कुछ विचार प्रकट करना चाहता हूं। राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया हैं कि वे भाग 3 में उल्लिखित किसी रियासत और संघ के बीच में किये हुये किसी समझौते की पांच वर्ष के उपरान्त समाप्त कर सकते है। श्रीमान्, मेरा यह निवेदन है कि पांच वर्ग का समय बहुत कम है। इस खंड में ही यह कहा गया था कि इस प्रकार का समझौता कम से कम दस वर्ष के लिये वैध समझा जायेगा। यदि इस प्रकार के समझौते को पांच वर्ष के उपरान्त समाप्त कर दिया जायेगा, तो इससे सम्बन्धित रियासत की आर्थिक स्थिति डांवाडोल हो जायेगी। वास्तव में किसी दीर्घकालीन योजना के लिये पांच वर्ष का समय बहुत कम हैं। मेरा यह निवेदन हैं कि रियासत की अनुमति से उसमें परिवर्तन किया जा सकता है। यदि अर्थायोग के प्रतिवेदन उपस्थित करने पर राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि इस प्रकार के समझौते को समाप्त करता आवश्यक है तो वे सम्बन्धित रियासत

से परामर्श करके ऐसा कर सकते है। मैं यह कहना चाहता हूं कि यह समझौता एकतरफा नहीं होना चाहिये, क्योंकि इससे सम्बन्धित रियासत की बहुत आर्थिक हानि उठानी पड़ेगी।

श्रीमान्, जहां तक विधान में संशोधन करने की शक्ति का सम्बन्ध है, मैं अपने माननीय मित्र श्री सन्तानम् की इस सम्मत्ति से सहमत नहीं हूं कि विधान बेलोच होना चाहिये। उसे यथासम्भव लचीला होना चाहिये, क्योंकि इस समय भी छोटे प्रदेशों का बड़े प्रदेशों में समावेश हो रहा हैं और प्रान्तों तथा रियासतों में एकरूपता लाने का कार्य भी हो रहा हैं। सम्भवतः विधान के विभिन्न अंगों में एक प्रकार की एकरूपता लाने में कुछ समय लगेगा। इसलिये आरम्भ में पार्लियामेंट को परिस्थिति के अनुसार विधान को संशोधित करने की यथासंभव सुविधा प्राप्त होनी चाहिये। विधान में संशोधन करने की शक्ति लचीली होनी चाहिये, परन्तु इस सम्बन्ध में भी रियासतों और प्रान्तों में अन्तर किया गया हैं। मेरा यह निवेदन है कि जहां तक मतदाताओं की संख्या का सम्बन्ध हैं, रियासतों और प्रान्तों के इस अन्तर की समाप्त कर देना चाहिये। जहां तक विधान में संशोधन करने का सम्बन्ध हैं, रियासतों और प्रान्तों को समान अधिकार दिये जाने चाहिये।

इन शब्दों के साथ मैं विधान के मसौदे पर विचार करने के लिये जो प्रस्ताव उपस्थित किया गया है, उसका समर्थन करता हूं।

***श्री एन. माधव राव** (उड़ीसा : राज्य): उपाध्यक्ष महोदय, मेरा इस बहस में भाग लेने का विचार नहीं था, परन्तु वादानुवाद के समय विधान के मसौदे के प्रावधानों के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि जिस ढंग से मसौदा-समिति ने काम किया है, उसके सम्बन्ध में भी बहुत सी बातें कही गई है। उपेक्षणीय बातों की अपेक्षा तथा अपेक्षणीय बातों की उपेक्षा के समिति के तथाकथित दोषों के सम्बन्ध में आलोचना की गई थी। मि. अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने कल अपनी वक्तृता से और श्री सादुल्ला ने, जो कुछ समय उपरान्त समिति की ओर से अपनी वक्तृता देंगे, उस भ्रम का निराकरण कर दिया है या कर देंगे, जिस पर यह आलोचना आधृत है। मैंने यह विचार किया कि चूंकि समिति का एक सदस्य होने के नाते, जब से मैं समिति में सम्मिलित हुआ, मैंने उसकी कई बैठकों में भाग लिया हैं, इसलिये मुझे भी यदि इस सभा के अधिकांश सदस्यों को किसी प्रकार का भ्रम है, तो उसका निराकरण करने में अपना योग देना चाहिये।

यह सच है कि विधान के मसौदे में वे सब बातें प्रावहित नहीं है और उस विधि से प्रावहित नहीं हैं, जैसे कि प्रत्येक सदस्य अपनी इच्छानुसार चाहता।

[श्री एन. माधव राव]

उदाहरणार्थ माननीय सदस्यों ने यह कहा है कि विधान में गौवध का निषेध नहीं किया गया है, मूलाधिकारों में बहुत से प्रतिबन्ध लगे हुये है तथा राष्ट्रपिता राष्ट्रपताका और राष्ट्रगान का कोई उल्लेख नहीं है। हमारे दो माननीय मित्रों ने यह भी ठीक ही कहा है कि विधान के मसौदे में ईश्वर का भी कही उल्लेख नहीं है। हम सभी के अपने-अपने विचार है, परन्तु अन्य प्रसंगों में वे चाहे कितने ही बहुमूल्य और तर्कयुक्त हो, उन्हें विधान में उस समय तक स्थान नहीं दिया जा सकता, जब तक कि वे उसके उद्देश्यों के अनुरूप न हो और विधान-परिषद् उनको स्वीकार न कर ले।

कई वक्ताओं ने मसौदे की इस कारण आलोचना की हैं कि उसमें गांधी-विचारधारा का कोई भी प्रतिबिम्ब नहीं हैं और यद्यपि उसमें कुछ प्रावधान बाहर से तथा भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम से लिये गये हैं, किन्तु उसकी रूपरेखा में भारत की प्राचीन शासन-व्यवस्था के तत्व कहीं भी सन्निहित नहीं है।

क्या गांधी-विचारधारा के हमारे मित्र हमें यह बतायेंगे कि क्या वे तर्कयुक्त होकर अपने विचारों तथा उनके प्रतिफलों की स्वीकार करने के लिये तैयार हैं, क्योंकि ऐसा करने पर उन्हें उदाहरणार्थ सशस्त्र सेनाओं का परित्याग करना होगा, विधान-मण्डलों को भी समाप्त करना होगा, जिनके काम के बारे में हमें अधिकृत रूप से बताया गया है कि गांधीजी का यह मत था कि उससे केवल समय नष्ट होता है और साथ ही अपने न्यायाधीश वर्ग को भी समाप्त करता होगा, और उसके एवज में किसी सरल और सुगम न्याय-प्रणाली से काम लेना होगा तथा इस पर जोर देना होगा कि कोई भी सरकारी कर्मचारी अथवा समाज-सेवक 500 रुपये प्रति माह या जो भी वेतन सीमा निश्चित की जाये, उससे अधिक न पाये। मैं कांग्रेस के कुछ ऐसे नेताओं को जानता हूं कि जिनका यह विश्वास है कि यह सब कुछ किया जाना चाहिये और यह सब किया जा सकता है। परन्तु इस समय हम उस विधान की चर्चा कर रहे है, जिसे विधान-परिषद् ने अपनी पिछली बैठक में निश्चित किया था। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव (जिसे कि भारतीय स्वतंत्रता का पत्र भी कहा जाना हैं) और मूलाधिकारों को निश्चित करने के अतिरिक्त इस सभा ने विधान-मण्डलों की रचना तथा उसकी शक्तियां, संघ और प्रान्तों के अधिशासी-वर्ग तथा न्यायाधीश-वर्ग, विधायिनी शक्तियां का वितरण, संघ और प्रदेशों के राजकीय

सम्बन्ध, अर्थ-प्रबन्ध तथा उधार लेने की शक्तियां, विधान के संशोधन आदि के सम्बन्ध में कभी विस्तारपूर्वक निर्णय किया और कभी इनकी केवल रूपरेखा निश्चित की थी। क्या कोई भी ऐसा उदाहरण दिया जा सकता है कि सभा ने तो गांधी जी के सिद्धांतों के आधार पर निर्णय किया और उसे विधान के मसौदे के यथोचित रूप से स्थान नहीं दिया गया? यदि इन आलोचकों की यह धारणा हो कि सभा के निर्णयों को पूर्ण रूप से स्थान नहीं दिया गया है, या उसके विरुद्ध कोई प्रावधान रखे गये हैं, तो यह दूसरी बात है।

हमारे उन मित्रों की, जो यह चाहते थे कि शासन-व्यवस्था की स्वदेशीय विचारधारा को विधान में स्थान मिलना चाहिये, यह स्वीकार करना होगा (जैसा कि आज एक माननीय सदस्य ने कहा है) कि यद्यपि सिकन्दर के काल में उत्तर भारत में गणराज्य रहे हो, परन्तु राजा का ही भारतीय शासन व्यवस्था में मुख्य स्थान था। ऐसे समय में जब राजा लोकप्रिय नहीं रह गये है और भारतीय नरेशों के प्रति शक्ति परित्याग के उपरान्त भी केवल नाममात्र की सहिष्णुता दिखाई जाती है, जब कि रस्मी चुनाव और मतपत्र-पेटिका जनतंत्र के आवश्यक तथा प्रामाणिक चिह्न समझे जाने लगे है, भारत के प्राचीन दर्शनों से अपने तात्कालिक कार्य के लिये पथ-प्रदर्शन की सामग्री ढूंढना अव्यावहारिक होगा। इससे अधिक सार्थक बात तो यह है। इन सुन्दर विचारधाराओं के प्रतिपादकों ने पिछले अधिवेशन में, जब कि विधान बहुत कुछ निश्चित कर दिया गया था, इनकी ओर सभा का ध्यान यथेष्ट समय पर क्यों आकर्षित नहीं कराया और इन्हें उससे क्यों स्वीकार नहीं करवाया? यदि उनके सुझाव व्यावहारिक है, तो वे अब भी ऐसा क्यों नहीं करते है? वे मसौदा-समिति की अपनी बाद में सोची हुई बातों को स्थान न देने के लिये क्यों दोष देने है?

निस्संदेह कांग्रेस के तथा अन्य कुछ क्षेत्रों में यह भावना प्रबल है कि केन्द्र की राष्ट्रीय सरकार तथा प्रान्तों की लोक-सरकारें गांधी जी के सिद्धान्तों के विपरीत जा रही है और वे उसी नौकरशाही के ढंग से काम कर रही है, जैसे कि उनके पहले विदेशी शासक करते थे और यह कि जिस रामराज्य के लिये वचन दिया गया है, वह कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता। इस परिस्थिति में "गांधी की राह पर" का नारा एक प्रकार से संग्राम का नारा हो गया है और वह अधिकारियों के लिये एक चुनौती है। वह ठीक हो या गलत, परन्तु उस नारे को ठीक ही जगह उठाना चाहिये। मसौदा-समिति को जो सीमित कार्य सौंपा गया था, उस प्रसंग

[श्री एन. माधव राव]

में इस नारे की लागू करना निरर्थक प्रतीत होता है। इस प्रसंग में मुझे टामस हर्ने नाम के एक पुरातत्ववेत्ता के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है उसकी दो पंक्तियां स्मरण हो आई है:

''काल ने टामस हर्ने से कहा, 'जिसे मैं भूल जाऊं उसे आप सीख लें।''

''जिसे मैं भूल जाऊं उसे आप सीख लें'' वाली सलाह एक सीधी-सादी सलाह प्रतीत होती है।

*__श्री बी. दास__ (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, मेरा एक औचित्य प्रश्न है। सभा के सदस्यों ने मसौदा-समिति से मसौदा तैयार करने के लिये कहा था और अब सदस्य उस पर अपने-अपने विचार प्रकट कर रहे हैं। मसौदा-समिति के किसी सदस्य के हमसे यह कहने से कि हम नारे उठाते हैं, कोई लाभ न होगा। मैं मसौदा-समिति के किसी सदस्य के ऐसी भाषा के प्रयोग के प्रति अपना घोर विरोध प्रकट करता हूं।

*__उपाध्यक्ष:__ श्री दास, आप यह तो नहीं चाहेंगे कि मसौदा-समिति के किसी सदस्य के भाषण-स्वातंत्र्य को सीमित कर दिया जाये? आप या मैं उनसे सहमत न हों, परन्तु उन्हें अपने विचारों को प्रकट करने का अधिकार तो है ही? क्या यह ठीक नहीं है?

*__श्री एन. माधव राव:__ यह एक दुर्भाग्य की बात है कि ग्राम-पंचायतों के विषय में बहुत बाद-विवाद हुआ। डा. अम्बेडकर ने इस सम्बन्ध में जो कड़ी बातें कहीं, उनका आधार उनका अपना ही अनुभव है। परन्तु श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर के समान मैं अपने अनुभव के आधार पर अपनी ही ओर से बोलना चाहता हूं। पिछले तीस वर्षों से मैसूर सरकार ग्रामीणों के पुनरुत्थान और ग्राम-पंचायतों की उन्नति के कार्य को अपने कार्यक्रम में अग्रिम स्थान देती रही है। इस कार्य के लिये बहुत सा सरकारी धन व्यय किया गया है। दीवान से लेकर तहसीलदार तक सभी अधिकारियों ने अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार ग्रामसुधार में अपना योग दिया है। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि मैसूर की वर्तमान सरकार इस दिशा में अत्यन्त प्रयत्नशील है। इसका जो परिणाम हुआ है, वह कुछ जगहों में तो उत्साहवर्धक है और कुछ जगहों में संतोषजनक है। यह सच है कि कुछ गांव इस प्रकार झगड़ों में फंसे रहते है कि उनसे उनका छुटकारा ही नहीं हो पाता,

अथवा वहां छोटे मोटे अत्याचार होते रहते हैं अथवा वे अस्पृश्यता के गढ़ हैं। उनमें से बहुत से भावनाशून्य अथवा प्राणशून्य हैं। परन्तु—उनमें से लगभग तीस प्रतिशत अच्छे गांव है, अर्थात् वहां के लोगों की नियमित रूप से सभायें होती है, वे पंचायत-कर उघाते है, स्वेच्छा से कुछ कार्य करते है और सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हैं, प्रति सप्ताह स्वेच्छा से सफाई का काम करते है और बच्चों के टीके लगवाने के लिये यथोचित कार्यवाही करते हैं; इत्यादि। इस दिशा में जो कुछ भी सफलता होती है, वह किसी कार्यशील मुखिया या प्रभावशाली जमींदार ही के कारण होती है। मुझे विश्वास है कि देश के अन्य भागों में भी लोगों का यही अनुभव है। कुछ छोटी भारतीय रियासतों में, जहां नौकरशाही शासन-प्रणाली प्रयुक्त न होने पाई थी, मैंने गांवों में यह देखा है कि स्वयंसेवा और संगठित रूप से कार्य करने की भावना प्रबल रही है। यदि प्रान्तों और रियासतों की सरकारें बराबर प्रयत्न करती रहे, तो इसकी आशा की जा सकती है कि ग्रामीण लोगों का पुनरुत्थान हो सकता है। इस सभा के सदस्य इससे परिचित है कि गांधी जी गांवों में रचनात्मक कार्य चलाने पर बहुत जोर देते थे। एक अवसर पर उन्होंने यह कहा था—"यदि हमारे अधिकांश कांग्रेस-कर्मी गांवों के ही लोग हैं, तो वे हमारे गांवों को हर प्रकार से स्वच्छता के नमूने बना सकते है। परन्तु उन्होंने कभी भी इसे अपना कर्त्तव्य नहीं समझा कि वे ग्रामीणों के दैनिक जीवन से ऐक्य स्थापित करें।" विधान के मसौदे में कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे यथासम्भव प्रगति और शीघ्रता से ग्राम-पंचायतों का विकास करते में प्रान्तीय सरकारों की बाधा का अनुभव हो। इस समय केवल यही प्रश्न प्रमुख है कि विधान मण्डलों की निर्वाचन-योजनाओं को इन पंचायतों पर आधृत किया जाये या नहीं। यदि यह सभा यह निर्णय करे कि ऐसा करना आवश्यक है, तो विधान के मसौदे के दो अनुच्छेदों में थोड़ा बहुत संशोधन करना होगा। परन्तु इस कदम को उठाने के पहले इस सभा की सावधानी से इस पर विचार करना होगा कि क्या इन ग्राम पंचायतों को विभिन्न दलों की राजनीति के गर्त्त में डालने से उनकी शासन-प्रबन्ध की उपयोगिता हमेशा के लिये नष्ट तो न हो जायेगी।

उन सदस्यों की आलोचना के विपरीत, जिन्होंने मसौदा-समिति को इस कारण दोषी ठहराया कि उसने विधान की उनकी विचारधारा के अनुरूप नहीं बनाया, यद्यपि उस विचारधारा को सभा ने स्वीकार नहीं किया था, अन्य लोगों ने यह आलोचना की है कि समिति सभा के आदेशों से आगे बढ़ गई है। इस विषय पर आगे बोलने वाले वक्ता महोदय प्रकाश डालेंगे। श्री दास की आलोचना को

[श्री एन. माधव राव]

ध्यान में रखते हुये मुझे केवल यह कहना है कि मसौदा-समिति के सदस्य होते का यह अर्थ नहीं है कि समिति में या सभा में सदस्यों को अपने विचार प्रकट करते की स्वतंत्रता नहीं रह गई है।

विधान के मसौदे को बहुत कुछ इस अधिवेशन की विस्तृत कार्यावलि समझना चाहिये, क्योंकि इसी को आधार मान कर काम किया जायेगा। इसके अतिरिक्त अन्य विचारणीय प्रलेख भी है, जैसे विशेषज्ञों की अर्थ-सम्बन्धी समिति की रिपोर्ट और केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों की समिति की रिपोर्ट। सभा के सम्मुख केवल यही विचारणीय प्रलेख नहीं है। यदि विधान के मसौदे को इस दृष्टि से देखा जाये, तो सदस्यों को यह ज्ञात हो जायेगा कि यह आरोप, कि समिति सभा के आदेशों से आगे बढ़ गई है, निराधार है।

एक सदस्य महोदय ने यह कहा कि यदि इस विधान को स्वीकार किया गया, तो इससे मुकदमेबाजी बहुत बढ़ जायेगी। यदि विधान का स्वरूप संधानीय रहेगा, तो मुकदमेबाजी की सम्भावना अवश्य ही रहेगी। इसलिये इसकी और भी अधिक आवश्यकता है कि सभी अनुच्छेदों और खण्डों की ध्यानपूर्वक जांच की जाये, ताकि मुकदमेबाजी और उससे शासन में जो अनिश्चितता उत्पन्न होगी, वह यदि समाप्त न हो तो बहुत कम तो हो ही जाये।

श्रीमान्, इस सम्बन्ध में मैं एक दो बातों की ओर संकेत करना चाहता हूं। एक यह है कि जब कभी कोई संधानीय विधान बनता है, तो दो प्रकार की परस्पर विरोधी विचारधारायें उत्पन्न हो जाती है। एक विचारधारा तो इस प्रकार की होती है कि केन्द्र को शक्तिशाली होना चाहिये और दूसरी इस प्रकार की होती है कि राज्यों को अधिक से अधिक स्वायत्तशासी होना चाहिये। विधान के मसौदे के प्रावधानों में इन दोनों विचारधाराओं के बीच का मार्ग सुझाया गया है। मेरी अपनी धारणा यह है कि पलड़ा केन्द्र के पक्ष में कुछ भारी है। यदि सभा के अधिकांश सदस्य मुझ से सहमत हो, तो संतुलन ठीक किया जा सकता है। श्रीमान्, दूसरी बात यह है कि राज्यों के संघ में प्रवेश के सम्बन्ध में जो प्रावधान है वे अपर्याप्त है। हाल में कई प्रकार से समाविष्टि हुई है और हमें जहां तक ज्ञात है, अभी अन्तिम स्वरूप निश्चित नहीं हुआ है। जिस प्रणाली के अनुसार राज्य संघ में प्रवेश करेंगे, उसे शीघ्र ही ठीक-ठीक निश्चित करना है, ताकि सम्बन्धित अनुसूची में

प्रविष्ट राज्यों का उल्लेख हो सके और विधान के अन्य भागों का अन्तिम रूप दिया जा सके।

यह एक बुद्धिमत्तापूर्ण कथन है कि "शासन-प्रणालियों के सम्बन्ध में अन्य लोगों को विवाद करने दीजिये। जिससे सबसे अच्छी प्रकार शासन हो, वही सबसे अच्छी शासन-प्रणाली है।" परन्तु वर्तमान परिस्थिति के अधीन दुर्भाग्यवश हमें किसी प्रकार का लिखित विधान तैयार करना है और उसे वकीलों के ही हाथों बनना है। यदि कुछ माननीय सदस्य विधान के मसौदे को प्राचीन राजनैतिक बुद्धिमत्ता अथवा उदात्त देशप्रेम की भावना से अनुप्राणित करने में समर्थ हो, तो इस सभा में हममें से बहुत से लोग इस प्रयत्न का अवश्य ही स्वागत करेंगे।

श्री विश्वनाथ दास (उड़ीसा : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं स्पष्टीकरण के उद्देश्य से अपने माननीय मित्र से पूछ सकता हूं कि समिति के माननीय सदस्यों ने विधान-परिषद् के तथा विभिन्न समितियों के निर्णयों को भी क्यों परिवर्तित कर दिया?

***श्री एन. माधव राव:** यदि कोई स्पष्ट उदाहरण दिया गया, तो मुझसे बाद में बोलने वाले वक्ता महोदय उसका स्पष्टीकरण करेंगे।

***श्री टी. प्रकाशम्** (मद्रास : जनरल): माननीय श्री माधव राव ने यह कहा है कि हमारे पूर्वज मत पत्र-पेटिका और मत-पत्र से परिचित न थे। श्रीमान्, मैं उन्हें यह बताना चाहता हूं कि कांजीवरम् से बीस मील की दूरी पर उत्तरामेरूर नाम के एक गांव में एक मन्दिर है, जिसकी दीवारों पर एक शिलालेख में मत-पत्र-पेटिका और मत-पत्रों का वर्णन है। उसमें पूरा ब्यौरा दिया हुआ है। मत-पत्र-पेटिका एक बरतन के आकार की होती थी और जमीन पर रखी रहती थी। उसका मुंह ढका रहता था और उसके पेंदे में एक छेद होता था। मत-पत्रों के लिये कदजन की पत्तियों से काम लिया जाता था। प्रौढ़ मताधिकार था और निर्वाचन केवल गांव के लिये ही नहीं, बल्कि सारे भारत के लिये होता था। यह एक हजार वर्ष पहले की व्यवस्था है। मेरे माननीय मित्र इससे परिचित न थे और इसीलिये उन्होंने त्रुटिपूर्ण, बहुत ही भ्रमपूर्ण वक्तव्य दिया। मैं उसकी शुद्धि करना चाहता हूं।

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला** (आसाम : मुस्लिम): उपाध्यक्ष महोदय, विधान के मसौदे पर सामान्य रूप से जो बहस हो रही है, उसकी संक्षेप में चर्चा करने में मुझे कुछ संकोच का अनुभव हो रहा है, क्योंकि मैं भी मसौदा-समिति का एक सदस्य रहा हूं। इस सभा में पिछले चार दिनों में जो प्रश्न उठाये गये, उन सभी का तो उत्तर मैं नहीं दूंगा, परन्तु जिस प्रकार की आलोचना हुई है, उसके सम्बन्ध में सामान्य रूप से मैं कुछ कहूंगा और उन वास्तविक बातों को भी बताने का प्रयत्न करूंगा, जिनके आधार पर मसौदा-समिति ने कार्य किया। विधान के मसौदे को जिस कठिन परिश्रम के साथ तैयार किया गया है, उसकी कई माननीय सदस्यों ने कृपा करके प्रशंसा की है। कुछ माननीय सदस्य मसौदा-समिति को बधाई न दे सके, परन्तु मैं इसका भी स्वागत करता हूं क्योंकि सभी जानते है कि मिठाइयों के साथ नमकीन चीजों से भोजन अधिक स्वादिष्ट हो जाता है। पिछले तीन दिनों में जो आलोचनायें की गई है उनको मैंने बहुत ध्यानपूर्वक सुना है। मसौदा-समिति की मेरे सहकारियों अर्थात् श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर और श्री माधवराव के इस बहस में भाग लेने से मेरा कार्यभार कुछ हल्का हो गया है। हमारे कार्य के सम्बन्ध में जितनी भी आलोचनायें की गई है, उनको तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। कुछ इस श्रेणी की है कि हम अपने अधिकार क्षेत्र से बहुत आगे बढ़ गये है और कुछ इस क्षेणी की है कि विभिन्न समितियों की सिफारिशों की न मान कर हमने उनकी सम्मति की उपेक्षा की है और कुछ इस श्रेणी की है कि हमने भारतीय रियासतों और प्रान्तों में विभेद किया है। श्रीमान्, यदि मनुष्य की स्मरण-शक्ति को कमजोर कहा जाये तो सरकारी लोगों की स्मरण शक्ति को और भी कमजोर कहा जा सकता है। मसौदा-समिति स्वत: अस्तित्व में नहीं आई। यदि मुझे ठीक स्मरण है, तो यह अगस्त सन् 1947 ई. में इस सभा के एक प्रस्ताव द्वारा अस्तित्व में आई। उस समय मैं बहुत बीमार था और इसलिये उसकी बैठक में उपस्थित न हो सका। श्रीमान्, कार्यवाही की रिपोर्टों से मुझे यह पता चलता है कि उससे केवल लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव तक ही अपने को सीमित रख कर विधान बनाने को कहा गया था और इसलिये जिस प्रकार की आलोचना की गई है, वह स्वाभाविक ही है। उस समय भी बुद्धिमान लोग यही समझते थे कि इस प्रकार की आलोचना होगी और इसलिये बम्बई के विद्वान प्रधानमंत्री श्री खेर ने सरकारी प्रस्ताव पर एक संशोधन उपस्थित किया था, जिसमें हमको कुछ आदेश दिये गये थे। मैं उनके भाषण के कुछ अंश पढ़कर सुनाऊंगा। उन्होंने मूल प्रस्ताव

पर मसौदा-समिति के निर्माण के सम्बन्ध में एक संशोधन उपस्थित किया था और उसमें यह कहा गया था कि—"मसौदा-समिति का यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह वैधानिक सलाहकार के तैयार किये हुये भारतीय विधान के मसौदे की जांच करे, असेम्बली के निर्णयों को कार्यरूप में लाये और इनसे सम्बन्ध रखने वाली या इस प्रकार के विधान में सम्मिलित की जाने वाली सभी बातों को यथोचित स्थान दे और अपने दुहराये हुये विधान के मसौदे को सभा के विचारार्थ उपस्थित करे"। उनका यह संशोधन था। अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि-"हमने एक यह सिद्धान्त निश्चित किया है कि प्रान्तीय विधान के अधीन सभी कार्यवाही गवर्नर के नाम से होगी। सभा ने यह निर्णय किया है और यह भारत सरकार के एक्ट में भी सन्निहित है और इसे कार्यान्वित करने के लिये कई बातों को ठीक करना होगा। इस सम्बन्ध में अन्य विधानों में भी कुछ प्रावधान है और इसके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रावधान भी है, जो सामान्यत: इस विधान में समाविष्ट किये जाने चाहिये। यद्यपि इनके सम्बन्ध में सभा में अभी तक न कोई बहस ही हुई है और न कोई निर्णय ही किया गया है, परन्तु इनको मसौदे में स्थान देना ही होगा। हमने सभी महत्त्वपूर्ण विषयों के सम्बन्ध में निर्णय किये है। इनका समावेश होगा, परन्तु मसौदे में ऐसी बातें भी होंगी जो इनसे सम्बन्धित होंगी, अथवा अन्य प्रकार से आवश्यक होंगी।"

सभा ने इस संशोधन को स्वीकार किया था। श्रीमान्, सभा द्वारा स्वीकृत श्री खेर के इस संशोधन को दृष्टि में रखते हुये विधान-परिषद् के सदस्य किस मुंह से यह बात कह सकते है कि हम अपने अधिकारों के परे चले गये है?

*__श्री विश्वनाथ दास__: श्रीमान, क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या इस आदेश का यह अर्थ है कि समितियों की रिपोर्टों को स्वीकार किया जाये, उनमें परिवर्तन किया जाये अथवा इन समितियों की महत्त्वपूर्ण सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया जाये?

*__सैयद मोहम्मद सादुल्ला__: मैं उड़ीसा के भूतपूर्व प्रधानमंत्री माननीय श्री दास से प्रार्थना करना हूं कि वे मेरे भाषण में विघ्न न डालें। मैं उनके प्रश्न का उत्तर अपने वक्तव्य के अन्त में दूंगा। मैं इस सभा के अन्य माननीय सदस्यों से भी यही प्रार्थना करता हूं, क्योंकि अन्यथा मेरी विचारधारा टूट जायेगी। मैं यहां अपने मित्रों के समान निपुण वक्ता नहीं हूं और मैं लिखी हुई बातों को देख कर भी नहीं बोल रहा हूं। इसलिये यदि वे शांत रहे तो उनकी कृपा होंगी। यदि वे मुझ

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

से कुछ प्रश्न पूछना चाहे, तो मेरा भाषण समाप्त होने पर पूछें। यदि मैं उनका उत्तर दे सकूंगा तो सहर्ष दूंगा।

विधान के मसौदे की वास्तव में हमारे विद्वान प्रधानमंत्री द्वारा उपस्थित और इस सभा द्वारा एकमत से स्वीकृत लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव की कसौटी पर ही कसकर परखा जा सकता है। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में केवल आठ अनुच्छेद हैं, जिनमें से अन्तिम अनुच्छेद को विधान में स्थान देना आवश्यक नहीं है। क्या यहां कोई कह सकता है कि जिन सिद्धान्तों की लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव में परिभाषा की गई है, उनके अनुरूप हमने कार्य नहीं किया है? हम यह नहीं कह सकते हैं कि यही आठ अनुच्छेद हमारे विधान में होने चाहियें, क्योंकि उनसे तो केवल ढांचे का ही निर्माण होता है। मसौदा-समिति से तो विधान का पूरा चित्र बनाने को कहा गया। लक्ष्य-सम्बन्धी प्रस्ताव की उपस्थित करते हुए हमारे लोकप्रिय प्रधानमंत्री ने कहा था कि यह हमारे स्वप्न की अभिव्यंजना है, हमारी आकांक्षाओं का लक्ष्य है और यह एक 'घोषणा' मात्र है। ऐसे मोटे शब्दों में कोई विधान नहीं बन सकता; इसलिये इस सभा ने सरकार के आदेशानुसार, क्योंकि उस समय प्रस्ताव सरकारी दल के मुख्य प्रतोद (चीफ व्हिप) द्वारा उपस्थित किया गया था। सभा ने यह निश्चय किया कि विधान का मसौदा तैयार करने का कार्य समिति की सौंपा जाये। मैंने उस समिति में आने के लिये अपनी ओर से कोई भी प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में मसौदा-समिति से मुझे निकालने के लिये बहुत प्रयत्न किये गये। मैं कार्यवाही की रिपोर्टों में यह देखता हूं कि हमारे साहसी मित्र श्री कामत ने यह औचित्य प्रश्न उठाया था कि जब मेरा नाम प्रस्तावित किया गया था, उस समय मैं विधान-परिषद् का सदस्य नहीं था। सम्भवतः बिना वास्तविकता को जाने हुए ही उन्होंने यह बात कह डाली थी। मैं पहले से ही विधान-परिषद् का सदस्य था। परन्तु यह उन्होंने ठीक कहा था कि सिलहट के जिले में मतगणना के उपरान्त उसका एक हिस्सा पूर्वी पाकिस्तान में मिला दिया गया था और विधान-परिषद् में आसाम से आने वाले सदस्यों की संख्या कम करनी पड़ी थी, जिसके लिये एक गया चुनाव हुआ था परन्तु यदि मुझे अब ठीक स्मरण है, तो प्रान्तीय विधान-मण्डलों में हमने अगस्त सन् 1947 ई. में विधान-परिषद् के लिये सदस्य चुने थे और यदि मुझे ठीक स्मरण है, तो जिस समय श्री कामत ने यह आपत्ति की थी, उस समय मैं फिर चुन लिया गया था।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान्, स्पष्टीकरण के उद्देश्य से क्या मैं यह बता सकता हूं कि मेरे माननीय मित्र मि. सादुल्ला इस सभा में नहीं पधारे थे। उन्होंने न तो शपथ ली थी और न रजिस्टर पर हस्ताक्षर किये थे। इसलिये औचित्य की दृष्टि से उनको इस सभा का सदस्य नहीं कहा जा सकता था।

***सैयद मोहम्मद सादुल्लाः** श्रीमान्, मेरे प्रार्थना करने पर भी श्री कामत ने मेरे भाषण में विघ्न डालना उचित समझा है।

***श्री एम. थिरूमल रावः** क्या मैं यह जान सकता हूं कि यह सब कुछ किस प्रकार इस बहस से सम्बद्ध है?

***उपाध्यक्षः** हमें आगे बढ़ना चाहियें?

***सैयद मोहम्मद सादुल्लाः** श्रीमान्, मैं यह बताना चाहता था कि मसौदा-समिति के ये लोग वास्तव में विधान-परिषद् ने ही एकमत से चुने थे और अब कोई भी किस मुंह से यह कह सकता है कि वे योग्य नहीं है, वे एक विशेष दल के सदस्य नहीं हैं और यह कि उनमें से एक को छोड़कर और किसी सदस्य पर जेल से छूटने की छाप नहीं लगी हुई है? मैं माननीय सदस्य को कैसे बताऊं कि हमने यथाशक्ति अथक परिश्रम किया, कि हमने इस मसौदे को तैयार करने के लिये, जिसे केवल बहुरंगी कह दिया गया है, हमने तीन महाद्वीपों के सभी—परिचित, प्राचीन और आधुनिक विधानों की छानबीन की। परन्तु जो लोग कला प्रिय है, जिनको कलाकौशल से प्रेम है, वे अच्छी प्रकार जानते है। मेरा यह दावा है कि हमारे मसौदे में चाहे जितनी भी बातें रह गई हो, हमने कम से कम एक सम्पूर्ण चित्र तैयार करने का प्रयत्न किया है और सभा के विचारार्थ एक सम्पूर्ण प्रलेख को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। मसौदा-समिति का कभी भी यह दावा नहीं रहा है कि उसने विधान के सम्बन्ध में अन्तिम बात कह दी है, अथवा उसने जो प्रावधान निश्चित किये है, वे अकाट्य है अथवा इन अनुच्छेदों में किसी प्रकार का परिवर्तन हो ही नही सकता। इस मसौदे को इस सभा के सम्मुख अन्तिम रूप से स्वीकार होने के लिये प्रस्तुत करने का ही यह अर्थ है कि हम किसी विशेष नीति के पोषण के लिये वचनबद्ध नहीं हैं जहां कहीं हमने समितियों की

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

सिफारिशों से भिन्न मार्ग अपनाया है अथवा इस सभा के स्वीकृत सिद्धान्तों के विपरीत एक दो शब्द बदल दिये है, हमने अधोलिखित टिप्पणियों में इसकी ओर पर्याप्त रूप से संकेत कर दिया है ताकि यह न समझा जाये कि हमने धोखा देकर कुछ रख दिया है। जिन विषयों के सम्बन्ध में मसौदा-समिति ने यह समझा कि सभा के स्वीकृत सिद्धान्तों से अथवा समितियों की सिफारिशों से भिन्न मत ग्रहण करना चाहियें, उनकी ओर उसने सभा का ध्यान आकर्षित किया है।

समितियों के सम्बन्ध में हमने अपने को कठिन स्थिति में पाया। कुछ समितियों की सिफारिशें सभा के सामने रखी गई, उन पर विचार विमर्श हुआ और निर्णय किया गया, परन्तु कुछ समितियों की रिपोर्टें विशेषत: अर्थ-सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति और केन्द्र-प्रशासित क्षेत्रों की समिति की रिपोर्टें सभा के सम्मुख उपस्थित ही नहीं की गई थी। उन पर माननीय सदस्य विचार-विमर्श नहीं कर सके और उनके सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं किया गया। कुछ विषयों के सम्बन्ध में मसौदा-समिति ने स्वतंत्रता से अपनी सम्मति दो है। परन्तु हमने यह सब कुछ सद्दिच्छा से ही किया। दो विषयों के सम्बन्ध में, मैं आगे विस्तार से चर्चा करूंगा, परन्तु ईश्वर के लिये आप यह कटु धारणा न बनायें कि मसौदा-समिति का इस सभा के निर्णयों से पथ-प्रदर्शन नहीं हुआ।

इन दो समितियों के सम्बन्ध में पहले तो यह आलोचना की गई है कि मसौदा-समिति ने केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों की तदर्थ समिति की सिफारिशों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है। इन क्षेत्रों अर्थात् दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा के कई योग्य व्यक्तियों ने इस विचार का प्रतिपादन किया है। हमने बड़े आदर से उनके विचारों को सुना, परन्तु इसी सभा में हमने यह आलोचना भी सुनी है कि भारत को छोटे-छोटे प्रदेशों में विभाजित करके उन्हें संघ के अंग न बनाना चाहिये। इस तदर्थ समिति की सिफारिशें हमारे सामने थी, परन्तु हमारी समझ में नहीं आया कि उनके सम्बन्ध में क्या किया जाये। उदाहरणार्थ दिल्ली को ही लीजिये, उसकी जनसंख्या बीस लाख है। यदि उसे एक पृथक् प्रदेश बना दिया जाये—यद्यपि उसे लेफ्टिनेंट गवर्नर का प्रान्त बनाकर या केन्द्र के अधीन रखकर भी पृथक् प्रदेश नहीं बनाया जा सकता—तो हम अजमेर-मेरवाड़ा के समान अन्य केन्द्र प्रशासित क्षेत्रों के सम्बन्ध में क्या करेंगे? सन् 1941 ई. की जनगणना के अनुसार अजमेर-मेरवाड़ा

की जनसंख्या 6 लाख थी। परन्तु श्री मुकुटबिहारी भार्गव ने कृपा करके हमें यह बताया कि जनसंख्या बढ़कर 9 लाख हो गई है। हमें इस समय की जनसंख्या को 10 लाख समझ लेना चाहिये। इस दशा में यदि हम दिल्ली को लेफ्टिनेंट-गवर्नर का एक पृथक् प्रांत बनायें, तो अजमेर-मेरवाड़ा के सम्बन्ध में ऐसा क्यों न करें? फिर कुर्ग का क्या होगा? वह भी केन्द्र प्रशासित क्षेत्र है और उसकी जनसंख्या दो लाख से कुछ कम हैं। उसके अतिरिक्त अंडमान द्वीपसमूह के लोगों का भी यह दावा है कि उनके यहां भी एक मुख्यायुक्त है। इसलिये हमने इसे ही सर्वोचित समझा कि इस सम्बन्ध में बड़ी सभा, अर्थात् विधान-परिषद् ही निर्णय करे। क्या हमने यह ठीक नहीं किया? हमने विधान के मसौदे के भाग 7 में इस आदरणीय सभा का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित किया है? आप देखेंगे कि अधोलिखित टिप्पणी में हमने कहा है कि "समिति का यह मत है कि इस समय मुख्यायुक्तों के प्रान्त कहे जाने वाले तथा प्रथम अनुसूची के भाग 2 में उल्लिखित राज्यों का मुख्यायुक्तों के प्रान्तों से सम्बन्धित तदर्थ समिति की सिफारिशों के अनुसार निर्माण करने के सम्बन्ध में विस्तृत प्रावधान रखना आवश्यक नहीं है। इस भाग में जिन दुहराये हुए प्रावधानों का प्रस्ताव किया गया है, उनसे यदि विधान-परिषद् ने तदर्थ समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया, तो उन्हें अध्यक्ष महोदय की आज्ञा से व्यवहार में लाया जा सकेगा"।

यदि हम इन क्षेत्रों की और इनकी आकांक्षाओं की उपेक्षा करना चाहते, तो हम यह न कहते कि यह विधान-परिषद् पर निर्भर है कि वह तदर्थ समिति की सिफारिशों के आधार पर उनके लिये विधान बनाये या न बनाये।

अब मैं इससे अधिक गम्भीर इस आरोप के बारे में कहूंगा कि हमने अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों को अस्वीकार कर दिया। पूर्वी पंजाब, पश्चिमी बंगाल, उड़ीसा और आसाम के जिन सदस्यों ने हमारी सिफारिशों के इस भाग को आलोचना की है, उनकी बातें मेरी समझ में आती है और उनसे मेरी सहानुभूति है। परन्तु मैं यह चाहता हूं कि सभा इस सम्बन्ध मैं निर्णय करें कि जो प्रावधान हमने रखे हैं, वे अन्ततोगत्वा उन सिफारिशों से अच्छे हैं, या नहीं, जिनको कि अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति ने उपस्थित किया है। मद्रास के

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

एक माननीय सदस्य की। यह आलोचना सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ कि या तो हमने उन सिफारिशों को लापरवाही से पढ़ा या हममें इतनी योग्यता न थी कि हम उनमें सन्निहित सिद्धान्तों को समझ सकें। इन दोनों आरोपों के सम्बन्ध में मैं पूरे जोर से कहना चाहता हूं कि ये गलत है। इसके विपरीत हमने विशेषज्ञों की समिति को सिफारिशों पर बहुत ध्यानपूर्वक विचार किया। मैं उनकी रिपोर्ट से तथा उनके आंकड़ों से यह दिखाऊंगा कि यदि उस समिति की सिफारिशें स्वीकार की गई, तो प्रान्तों को विशेषतया आसाम, उड़ीसा और बिहार के गरीब प्रान्तों को नुकसान उठाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त यह कथन भी ठीक नहीं है कि मसौदा-समिति ने अर्थ-सम्बन्धी विशेषज्ञों को समिति की अधिकांश सिफारिशों को स्वीकार नहीं किया है। उस समिति को रिपोर्ट मेरे हाथ में हैं और यदि किसी सज्जन के पास भी वह है, तो वे देख सकते है कि पृष्ठ 41, परिशिष्ट 4 में समिति ने विधान के मसौदे में कुछ संशोधनों की सिफारिश की है। मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है कि मसौदा-समिति ने उनमें से 95 प्रतिशत सिफारिशों को स्वीकार किया है और वे हमारे प्रावधानों में समाविष्ट मिलेंगी। केवल अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति ने हमसे जिन आंकड़ों को अपनी सिफारिशों में सम्मिलित करने का सुझाव किया था, उनको हमने स्वीकार नहीं किया।

अब कुछ विशेष बातों के सम्बन्ध में कुछ कहूंगा। मैं पहले विशेषज्ञों की समिति की उस सिफारिश की चर्चा करूंगा, जो उन्होंने सन के निर्यात-कर के उस भाग के बारे में को थी, जो भारत के सन उत्पन्न करने वाले प्रान्तों को प्राप्त है। भारतीय गणराज्य के लिये यह विषय बहुत महत्त्वपूर्ण है। जैसा कि सभी जानते है कि संसार में सन केवल हमारे यहां चार प्रान्तों में ही उत्पन्न किया जाता है। मुझे समाचार पत्रों की इस सूचना से प्रसन्नता हुई कि मद्रास प्रान्त में सन उत्पन्न करने का प्रयास किया जा रहा है। परन्तु यदि वस्तुस्थिति को देखा जाये, तो संसार में जितना सन उत्पन्न होता है, उसका 85 प्रतिशत अविभाजित बंगाल में उत्पन्न किया जाता था। बिहार में उसका 7 प्रतिशत, आसाम में 6 प्रतिशत और उड़ीसा में 2 प्रतिशत उत्पन्न किया जाता था; परन्तु बंगाल के पूर्वी बंगाल और पश्चिमी बंगाल में विभाजित हो जाने के उपरान्त अब यह अनुपात नहीं रहा है।

पूर्वी बंगाल में, बंगाल में जितना सन उत्पन्न होता था, उसका 75 प्रतिशत उत्पन्न होता था। इसलिये वर्तमान पश्चिमी बंगाल में संसार के सन का केवल 10 प्रतिशत या 12 प्रतिशत उत्पन्न होता है। इस स्थिति से आसाम, बिहार और उड़ीसा की प्रतिशत उत्पत्ति में भी अन्तर आ गया है। परन्तु फिर भी अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की रिपोर्ट में हम क्या पाते है? उनकी यह सिफारिश है कि चार प्रान्तों को भारत सरकार के सन् 1935 ई. के अधिनियम के अधीन सन के निर्यात-कर का जो 62½ प्रतिशत भाग मिलता था, वह अब समाप्त कर दिया जाये। वे चाहते है कि इस बिना पर प्रान्तों को धन न दिया जाये। परन्तु उन्होंने यह अनुभव किया कि गरीब प्रान्तों को इसके कारण बहुत हानि उठानी पड़ेगी और इसलिये उन्होंने यह सिफारिश को है कि दस वर्ष तक कम से कम शिष्टता के नाते भारत सरकार को यह धन इस अनुपात में देना चाहिये:

पश्चिम बंगाल	–	एक करोड़
आसाम	–	पन्द्रह लाख
बिहार	–	सत्रह लाख, और
उड़ीसा	–	तीन लाख।

माननीय सदस्यों से मेरी यह प्रार्थना है कि वे इस पर गम्भीरता से विचार करे कि क्या इस प्रकार का वितरण आसाम जैसे या उड़ीसा या बिहार जैसे प्रान्त के लिये न्यायपूर्ण होगा। बिहार का उत्पादन भारत के सन के उत्पादन के 7 प्रतिशत से बढ़कर 35 प्रतिशत हो गया हैं। इसी प्रकार आसाम का उत्पादन बढ़कर 30 प्रतिशत हो गया है और इसी अनुपात में उड़ीसा का भी उत्पादन बढ़ गया है। इस पर भी अर्थ सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति, नौकरशाही के जमाने में जो अन्याय किया गया था, उसे बनाये रखना चाहती है और उसी अनुपात में प्राप्त कर का वितरण करना चाहती है, जिसके अनुसार पश्चिमी बंगाल को, जो सन के कुछ उत्पादन का केवल 10 या 12 प्रतिशत उत्पन्न करता है, एक करोड़ की धनराशि मिलती है।

समिति ने एक यह तर्क किया है कि अन्य प्रान्तों में भी चाहे सन उत्पन्न किया जाता हो, परन्तु जो कारखाने सन का माल तैयार करते है वे बंगाल ही में हैं। यह सच है कि निर्यात-कर केवल कच्चे सन पर ही नहीं लगाया जाता,

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

बल्कि तैयार माल पर भी लगाया जाता हैं। परन्तु विचार कीजिये कि इसका प्रभाव क्या होगा। पश्चिमी बंगाल अपनी भूमि का प्रसार नहीं कर सकता। यहां जितनी भी ऊसर जमीन है, वह पूर्वी बंगाल से आये हुये शरणार्थियों को बसाने के लिये ली जा रही है। यदि कोई प्रान्त सन का उत्पादन बढ़ा सकते है, तो वे आसाम और उड़ीसा के प्रान्त हैं। परन्तु यदि हमें कोई लाभ न हुआ और यदि हमने सन के निर्यात-कर का उनका भाग उन्हें न दिया, तो कम से कम आसाम किस कारण सन की फसल बढ़ायेगा? भारत के लिये सन इस अर्थ में महत्त्वपूर्ण है कि पश्चिमी बंगाल की सन को सभी पैदावार यूरोप अथवा अमेरिका के हाथों बेच दी जाती है और उसके बदले में हमें स्टर्लिंग अथवा डालर का विनिमय प्राप्त होता है, जिसकी हमें बहुत आवश्यकता रहती है। यदि कल आसाम और उड़ीसा के प्रान्त सन पैदा करना छोड़ दें, तो बंगाल के सन के कारखाने बेकार हो जायेंगे और उन्हें बन्द करना पड़ेगा। इसी कारण मसौदा-समिति ने उन सिफारिशों को स्वीकार करना उचित नहीं समझा और पहले के समान स्थिति को बनाये रखना ही श्रेयस्कर समझा।,

अर्थ-सम्बन्धी विशेषज्ञों की समिति को दूसरी सिफारिश यह है कि सन के निर्यात-कर के इन प्रान्तों के भाग को समाप्त करने से इन्हें जो हानि होगी, उसे पूरा करने के लिये भारत सरकार को, जो इस समय प्रान्तों के आय-कर का 50 प्रतिशत भाग लेती हैं, उनके भाग को बढ़ाकर 60 प्रतिशत कर देना चाहिये; अर्थात् उनके भाग में 10 प्रतिशत की वृद्धि कर देनी चाहिये। श्रीमान्, इस सभा के अधिकांश सदस्य यह नहीं जानते है कि आयकर की इस वितरण-व्यवस्था से बिहार और आसाम के गरीब प्रान्तों के साथ कितना अन्याय हो रहा है। बिहार कच्चा माल पैदा करता है। बिहार ही में बड़े-बड़े लोहे के कारखाने तथा दफ्तर है, परन्तु उनके मुख्य दफ्तर बंबई में है और इसलिये आय-कर बंबई में दिया जाता है। इसलिये इस आय-कर के लिये बिहार को कोई श्रेय नहीं मिलता हैं। बिहार इस व्यवस्था में बदलाव के लिये गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाता रहा है, परन्तु उसे अभी तक सफलता नहीं मिली है। आसाम में इससे भी बुरी दशा है।

देश के विभाजन के पूर्व आसाम में लगभग 1200 चाय के बाग थे। सिलहट के एक बड़े भाग के पूर्वी पाकिस्तान में मिल जाने पर भी आसाम में एक हजार चाय के बाग थे। आसाम का यही एक संगठित उद्योग है। परन्तु इन 1000 चाय के बागों में से लगभग 800 के बड़े दफ्तर या प्रबन्धकों के दफ्तर या तो कलकत्ते में या लंदन में स्थित है जब से यह प्रणाली प्रयोग में आई, आसाम इस प्रणाली को बदल डालने के लिये केन्द्रीय सरकार से बराबर प्रार्थना करता रहा है। इस प्रणाली के अधीन वसूली के आधार पर विभाजन होता है, न कि इस आधार पर कि उत्पत्ति कहां हुई है।

अब श्रीमान्, क्या आप यह समझते हैं कि यदि हम अर्थ-सम्बन्धी समिति के प्रावधान को स्वीकार करें, तो क्या इससे बिहार और आसाम के प्रति न्याय होगा? हम सारी प्रणाली को बदल डालना चाहते थे और अर्थ-सम्बन्धी समिति ने हमारे सबल तर्क को स्वीकार किया। परन्तु उन्होंने बीच का मार्ग ग्रहण करने का प्रयास किया हैं और उन्होंने जो सिफारिशें की है, वे धारा 55 में दी हुई है। उनका कहना है—''हमारी यह सिफारिश है कि प्रान्तीय भाग अर्थात् कुल आय का 60 प्रतिशत प्रान्तों के बीच निम्नलिखित ढंग से वितरित किया जाये:

20 प्रतिशत जनसंख्या के आधार पर

35 प्रतिशत वसूली के आधार पर

5 प्रतिशत उस प्रकार, जैसे पैरा 46 में बताया गया हैं।''

पैरा 56 इस प्रकार है—''अभिभाजन-प्राधिकारी को 5 प्रतिशत की तीसरी धनराशि संतुलन के लिये काम में लानी चाहिये, ताकि अन्य दो धनराशियों के विभाजन के कारण कोई प्रान्त कठिनाई में पड़ जाये, तो उसकी कठिनाई को दूर किया जा सके।''

श्रीमान्, देशी रियासतों के उड़ीसा प्रान्त में समावेश हो जाने के उपरान्त वर्तमान प्रान्तों में आसाम ही की जनसंख्या सबसे कम है। सन् 1941 ई. को जनगणना के अनुसार आसाम की जनसंख्या 102 लाख थी, परन्तु अब वह 72 लाख रह गई है। उड़ीसा की जनसंख्या बढ़ गई हैं। इसलिये यदि आय-कर की विभाजनीय धनराशि को जनसंख्या के आधार पर विभाजित किया जाये, तो आसाम को बहुत कम मिलता है; या यों कहिये कि आसाम को कम की हुई धनराशि मिलेगी।

[सैयद मोहम्मद सादुल्ला]

इसके अतिरिक्त यह कहा गया है कि 35 प्रतिशत वसूली के आधार पर वितरित किया जाना चाहिये। इस प्रकार आसाम और बिहार दोनों प्रान्तों को हानि होगी, क्योंकि आसाम के सम्बन्ध में वसूली कलकत्ते में होती है और बिहार के सम्बन्ध में बम्बई में। इसलिये 60 प्रतिशत का एक बड़ा भाग इन प्रान्तों के हाथ से निकल जायेगा। केवल उस कठिनाई को दूर करने के लिये 5 प्रतिशत रह जाता है, जो विशेष प्रान्तों के सम्बन्ध में उत्पन्न हो। अभी तक हमारा चिल्लाना बेकार हुआ है। हमारी आवाजें केन्द्र में नहीं सुनी जाती है। चाहे जितना भी गला फाड़ कर हम चिल्लायें और चाहे जितना भी प्रयास हमारा प्रधान-मंत्री करे, हमारी कोई सुनवाई नहीं होती है। इसलिये मसौदा-समिति ने यह विचार किया कि यदि विशेषज्ञों की समिति की सिफारिशों की स्वीकार किया जाये, तो इससे गरीब प्रान्तों का हितसाधन न होगा।

इसके अतिरिक्त समिति ने यह सिफारिश की है कि तम्बाकू का उत्पादन-कर प्रान्तों के बीच अगणित उपभोग के आधार पर विभाजित किया जाना चाहिये। इससे आसाम या उड़ीसा के प्रान्तों की कोई लाभ न होगा, क्योंकि उनकी जनसंख्या कम है। यद्यपि अपनी मुख्य सिफारिशों में विशेषज्ञों की समिति ने इस ओर संकेत किया है, परन्तु परिशिष्ट 6 में उसने संशोधनों की जो सूची दी है, उसमें इसका उल्लेख नहीं किया है। इसलिये जब उन्होंने इसको स्वीकार नहीं किया है तो मसौदा-समिति इसे स्वीकार न करने के लिये दोषी नहीं ठहराई जा सकती।

अन्त में श्रीमान्, विशेषज्ञों की समिति ने यह सिफारिश की है कि प्रान्तों और केन्द्र की आर्थिक स्थिति की जांच करने के लिये तुरन्त ही एक अर्थायोग नियुक्त होना चाहिये। हमने इसे स्वीकार नहीं किया है कि उसको तुरन्त ही नियुक्त करना आवश्यक है, क्योंकि हमने यह अनुभव किया कि इस समय ऐसे आयोग की नियुक्ति से न प्रान्तों को ही कोई लाभ होना और न केन्द्रीय सरकार को ही। इसके अतिरिक्त उसको काम करने के लिये आवश्यक सामग्री उपलब्ध न होगी। विशेषज्ञों की समिति ने स्वयं कहा है:

''इस देश में अर्थ-सम्बन्धी आंकड़ों तथा इसी प्रकार के अन्य ब्यौरे के अभाव के कारण बहुत बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। इसलिये मोटी तौर पर विचार करके ही साधनों का विभाजन किया जाना है; कम से कम उस समय तक के लिये तो यही किया जाना है, जब तक आवश्यक ब्यौरा प्राप्त नहीं हो जाना है। हम इस प्रकार के आंकड़ों को इकट्ठा करने और इससे

सम्बन्धित अनुसन्धान को बहुत महत्त्व देते है और हमें विश्वास है कि सरकार अविलम्ब आवश्यक प्रबन्ध करेगी...''

*__एक माननीय सदस्यः__ माननीय सदस्य महोदय का कब तक बोलते रहने का विचार है? क्या उनके लिये कोई काल-सीमा नहीं है?

*__सैयद मोहम्मद सादुल्लाः__ यदि मेरे मित्र मुझे आज्ञा दें तो मैं कुछ ही मिनटों में समाप्त कर दूंगा।

*__उपाध्यक्षः__ मेरे विचार से मसौदा-समिति की जो आलोचनायें की गई है, उनका उत्तर देते के लिये जितना समय चाहे ले सकते है। इसके लिये आपको उन्हें अवश्य ही समय देना चाहिये।

*__सैयद मोहम्मद सादुल्लाः__ हम यह देखते है कि विशेषज्ञों की समिति के सिफारिश करने पर भी इस समय कोई ब्यौरा उपलब्ध नहीं है। पुस्तिका के पृष्ठ 27 में जो आंकड़े प्रकाशित किये गये है, उनसे पता लगता है कि सन् 1937-38 ई. से केन्द्रीय सरकार का आयव्ययक घाटे का आय-व्ययक रहा है। सन् 1946-47 ई. की दुहराई हुई आगणनाओं के अनुसार उसे 45 लाख का थोड़ा सा घाटा हुआ है, परन्तु श्रीमान्, मुझे विश्वास है कि जब आंकड़े अन्तिम रूप से प्रकाशित किये जायेंगे तो यह प्रत्यक्ष हो जायेगा कि घाटा अधिक है। मैं यह समझता हूं कि इसी कारण से केन्द्रीय सरकार ने चार प्रान्तों को दिये जाने वाले सन के निर्यात-कर की एकबारगी कम कर दिया है और वह अब 62½ प्रतिशत से घट कर केवल 20 प्रतिशत रह गया है। यदि उसे अत्यधिक अर्थ-सम्बन्धी कठिनाई न होती, तो वह यह असाधारण कार्यवाही न करती।

माननीय श्री के. सन्तानम् (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, मेरा यह औचित्य प्रश्न है कि मसौदा-समिति का भारत सरकार के आर्थिक-प्रबन्ध से कोई सम्बन्ध नहीं है मेरे विचार से माननीय सदस्य महोदय की अपनी चर्चा विधान तक ही सीमित रखनी चाहिये।

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला:** श्रीमान्, मसौदा-समिति पर यह आरोप लगाया गया है कि उसने इस विषय की उपेक्षा की है।

पिछले दस वर्षों से भारत सरकार के घाटे के आय-व्ययक रहे हैं और अब वह शरणार्थियों को बसाने में, कश्मीर की लड़ाई में तथा हैदराबाद को पुलिस को कार्यवाही में बहुत धन व्यय कर रही है। इस कारण वह प्रान्तों को पर्याप्त सहायता देने में समर्थ नहीं है। यद्यपि प्रान्त गला फाड़कर यह चिल्ला रहे है कि केन्द्र उनकी आर्थिक सहायता नहीं दे रहा है और उनकी उपेक्षा कर रहा है। श्रीमान्, मैं एक शब्द विशेषतया आसाम की स्थिति के सम्बन्ध में कहना चाहता हूं, क्योंकि इस सभा के अधिकांश सदस्य उस प्रान्त की स्थिति से परिचित नहीं है। वह भारतीय गणराज्य का सीमावर्ती प्रान्त ही नहीं है, बल्कि पूर्व से आक्रमण को रोकने के लिये एक भीति के समान भी है। (*विघ्न*)

श्रीमान्, यदि आप मुझे बोलने की आज्ञा नहीं देते है, तो मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है। परन्तु आसाम के सदस्य के नाते मैं कुछ शब्द कहना चाहता हूं।

***उपाध्यक्ष:** आप मसौदा-समिति के सदस्य के नाते बोल रहे है।

***माननीय श्री बी.जी. खेर** (बम्बई : जनरल): क्या मैं यह सुझाव उपस्थित कर सकता हूं कि वे इस विषय पर कल बोल सकते है, ताकि हमें कुछ समय मिल सके?

***सैयद मोहम्मद सादुल्ला:** श्रीमान्, मुझे आपका निर्णय शिरोधार्य है। मैंने यह विचार किया कि मैं इस सभा में तीन हैसियत से उपस्थित हूं। एक तो मैं मसौदा-समिति का सदस्य हूं और साथ ही आसाम के उपेक्षित प्रान्त का प्रतिनिधि हूं तथा मुसलमानों का भी प्रतिनिधि हूं। असम और मुसलमानों के बारे में मैं केवल दो बातें कहना चाहता था, परन्तु उन्हें मैं आगे चल कर किसी अवसर पर कह लूंगा।

***उपाध्यक्ष:** मेरे विचार से श्री कामत कोई संशोधन उपस्थित करना चाहते थे। क्या माननीय सदस्य महोदय उस पर जोर देना चाहते है?

***श्री एच.वी. कामत:** मैं उस पर जोर नहीं दें रहा हूं, क्योंकि वह केवल शाब्दिक संशोधन है।

उपाध्यक्षः प्रस्ताव यह है किः

''विधान-परिषद् अपने ता. 29 अगस्त सन् 1947 ई. के प्रस्ताव के अनुसार नियुक्त मसौदा-समिति द्वारा निश्चित विधान के मसौदे पर विचार आरम्भ करती है।''

प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया।

***उपाध्यक्षः** मुझे सभा के भविष्य के कार्यक्रम के सम्बन्ध में कुछ कहना है। हमें संशोधन उपस्थित करने के लिये कल और परसों के दो दिन तो मिल ही जायेंगे। मुझे यह ज्ञात हुआ है कि एक सदस्य महोदय ने हमारे अध्यक्ष महोदय के पास एक पत्र भेजा था, जिसमें उन्होंने दस दिन के समय की मांग की थी। हमने अपने लिये जो कार्यक्रम निश्चित किया है, उसमें बहुत उलट-फेर किये बिना इतना समय देना असम्भव है। इसलिये अन्तिम दिन वृहस्पतिवार होगा और समय 11 तारीख को 5 बजे तक का होगा।

मुझे यह भी ज्ञात हुआ है कि तीन हजार संशोधन प्रान्त हो चुके है और मुझे यह विश्वास है कि अगले दो दिनों में और भी संशोधन भेजे जायेंगे। मैं साहस बटोर कर सभा के विचारार्थ एक सुझाव उपस्थित करना हूं, वह यह है कि इस सभा में एक-एक संशोधन को उठाने के बदले यह अच्छा होगा कि जिन लोगों ने संशोधन उपस्थित किये है, वे या तो मसौदा-समिति के सभी सदस्यों से एक साथ मिलकर या उसके कुछ सदस्यों से मिलकर विचार-विमर्श कर ले। इस प्रकार शीघ्रता से कार्य हो सकेगा। यह आप पर निर्भर है कि आप इस सुझाव की बिना सुने हुये भी तुरन्त ही अस्वीकार कर दें या किसी प्रकार का समझौता कर ले। यह हो सकता है कि मसौदा-समिति कुछ संशोधनों को स्वीकार करने के लिये राजी हो जाये और यह भी हो सकता है कि कुछ संशोधनों पर आगे विचार करने की आवश्यकता न होगी। यदि आप इस सुझाव को स्वीकार करें, तो मेरी राय से यह व्यवस्था शुक्रवार से व्यवहार में आ जाये और इसके लिये 10-30 बजे प्रातःकाल का समय निश्चित किया जाये।

***श्री टी.टी. कृष्णमाचारी** (मद्रास : जनरल): श्रीमान्, क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि मसौदा-समिति अस्तित्व में है?

***उपाध्यक्षः** वह चाहे अस्तित्व में न हो, परन्तु, उसके सदस्य जीवित है और वे इस सभा के कार्य को कम करने के उद्देश्य से इस कष्ट हो उठाने के लिये तैयार है।

***प्रो. एन.जी. रंगाः** आप अवश्य ही उस प्रणाली से परिचित होंगे, जिसका हम पहले अनुसरण करते रहे है। जहां तक उन लोगों का सम्बन्ध है, जो भारत की राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य हैं या जिनका उससे सम्बन्ध है, वे जैसा कि आपने सुझाया है, इस काम को कम करने के लिये और आपके काम में सुविधा पैदा करने के लिये प्रत्येक दिन तीन चार घण्टे के लिये मिलते रहे है। यदि हम आपके सुझाव को स्वीकार करें, तो इसके अतिरिक्त हमें यहां मसौदा-समिति के साथ बैठना होगा और उनसे अमुक-अमुक संशोधन को स्वीकार करने के लिये प्रार्थना करनी होगी। इसका अर्थ यह होगा कि हमें फिर प्रत्येक दिन तीन या चार घण्टे के लिये और मिलना होगा। इसलिये मेरा आपसे आदरपूर्वक यह निवेदन है कि यह सुझाव व्यावहारिक न होगा और हममें से बहुत से लोगों को स्वीकार्य न होना। इसलिये हम यह चाहते है कि आप हमें इस सुझाव से मुक्त कर दें।

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरारः जनरल): मैं प्रो. रंगा के सुझाव का समर्थन करना हूं। जो सुझाव उपस्थित किया गया है, वह वास्तव में व्यावहारिक नहीं है और अच्छा तो यह होगा कि इन संशोधनों को शीघ्रता से निबटाने का कार्य सदस्यों पर ही छोड़ दिया जाये। इसलिये मेरा सुझाव यह है कि जो कार्य-प्रणाली अब तक रही है, उसे रहने दिया जाये और यदि सदस्य मसौदा-समिति से समझौता न कर सके, तो उनकी इस सभा में संशोधन उपस्थित करने का अधिकार होना चाहिये।

***उपाध्यक्षः** यदि आय सहमत नहीं है, तो आप मेरे सुझाव को स्वीकार न करे। इसके अतिरिक्त मसौदा-समिति का अस्तित्व अभी नहीं मिटा है।

एक बात और है। शुक्रवार के दिन मुहर्रम के कारण पूरी छुट्टी रहेगी और माननीय अध्यक्ष महोदय ने हमें शनिवार का दिन संशोधनों के अध्ययन के लिये दिया है। इसलिये अब हम सोमवार 15 तारीख को दस बजे प्रातःकाल मिलेंगे।

***श्री एच.वी. कामत:** कार्यक्रम के सम्बन्ध में क्या मैं यह जान सकता हूं कि क्या प्रस्तावना पर सबसे पहले विचार होगा या सब से अन्त में?

***उपाध्यक्ष:** मैं इस समय इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं सुना सकता।

इसके पश्चात् सभा सोमवार ता. 15 नवम्बर सन् 1948 ई. को 10 बजे प्रात:काल तक के लिये स्थगित हो गई।